उत्तर पूर्व भारत : गर्व और धरोहर की एक खोज–यात्रा

देश को जानने, समझने और जुड़ने के लिए पुस्तकों, अखबारों, रेडियो–टीवी के खबरों की दुनियाँ को छोड़कर एवं 'क्लास–रूप टीचिंग' के स्थान पर देश को जोड़ने वाली राष्ट्रीय नेटवर्क, भारतीय रेलवे–ट्रेन से रिश्ता जोड़कर दिल्ली विश्वविद्यालय के ज्ञानोदय–V के बैनर तले दिल्ली विश्वविद्यालय की आठ टीम उत्तर–पूर्व भारत के सभी सातों राज्यों के गर्व और धरोहर की खोज में भारतीय रेलवे–ट्रेन को 'नॉलेज ऑन व्हील' बनाते हुए 18 दिसम्बर 2014 को दिल्ली के हजरत निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन से उत्तर पूर्व भारत की ओर कूच करती है। देश की एकता, अखंडता और विविधता के इन्द्रधनुषी सौन्दर्य के साक्षात्कार का माध्यम संपूर्ण देश को एकसूत्र में जोड़ने वाली भारतीय रेल के अतिरिक्त भला दूसरा कोई और भला हो भी सकता था क्या? शायद यही कारण रहा होगा कि राष्ट्रपति महात्मा गाँधी ने भी देश को जानने, समझने और जुड़ने के लिए तथा देश में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से 'मास' को जोड़ने के लिए भारतीय रेल को ही चुना!

भारत की मुख्यधारा से उत्तर पूर्व भारत को जोड़ने के लिए और उत्तर पूर्व भारत के सामाजिक–आर्थिक–धार्मिक–राजनीतिक–सांस्कृतिक पहचान को चिन्हित कर उसे राष्ट्रीय पटल पर रखकर उत्तर–पूर्व भारत की समग्र छवि का अन्वेषण कर उसके प्रति शेष भारत की पूर्व निर्धारित अवधारणा के पुनर्गठन और उसके प्रति शेष भारत की वास्तविक पहचान को चिन्हित करना ज्ञानोदय–V की रेल–यात्रा का संकल्प बिन्दू था। उत्तर पूर्व भारत की समस्याओं, चुनौतियों, विकास, परंपरा, रीति–रिवाज, संरचनाओं और संभावनाओं की तलाशकर उसे

ऊँडान ऊँची होती है, जिसे हमें और दिल्ली दोनों को ही सीखना होगा, छोटे शहरों की तरह सोचना होगा। क्योंकि शहर छोटी हो सकती है, सोच नहीं। छोटे शहरों को देने की आदत होती है, लेने की नहीं। जबकि बडे शहरों/बड़े लोगों को देने की आदत नहीं है, छीनने अथवा संग्रहित करने की आदत होती है। व्यक्ति बड़ा–छोटा नहीं होता, व्यक्ति की सोच बड़ी–छोटी हो सकती है, व्यक्ति के कर्म बड़े–छोटे हो सकती है। आइए हम भी अपनी सोच को बड़ी करते हुए 'भूमि–अधिग्रहण का त्रिपुरा मॉडल' पर जरा सोचें। लें या ना लें यह बाद में तय करें किन्तु सोचने में क्या जाता है। सोच तो कभी भी आ सकती है और सोच बदल भी सकती है, आइए सोंचे जरा!

डॉ. अंजन कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज
एवं
ग्रुप–इंचार्ज, त्रिपुरा
ज्ञानोदय–V, दिल्ली विश्वविद्यालय

मानवीय औदात्य की चरम परिणति का महाकाव्यः रामचरितमानस

सारांशः हिंदी साहित्य समेत संपूर्ण विश्व साहित्य में रामचरित मानस का अप्रतिम स्थान है। सदियों से यह न केवल भारतीय बल्कि विश्व में व्याप्त विभिन्न समाजों को नैतिक, व्यावहारिक और मानवीय गरिमा से परिपूर्ण जीवन का दिशा–निर्देश देती आई है। इसका कारण रामचरितमानस की सर्वांगपूर्णता है जिसे लोंजाइनस'उदात्तता' कहते हैं। इस शोध आलेख में रामचरितमानस में व्याप्त उदात्तता और भारतीय संस्कृति में इसके योगदान का विवेचन–विश्लेषण किया गया है।

मूल शब्दः रामचरितमानस, उदात्तता, समाज, संस्कृति, मानवता ।

अपने ग्रंथ पेरिइप्सुस में लोंजाइनस उदात्तता को परिभाषित करते हुए लिखते हैं, कि 'it is 'the echo of greatness of spirit-' यानी भावनाओं, अनुभूतियों या आवेगों की महनीयता की उच्चता ही उदात्तता है। वह इसे 'एक्सटेसी' अथवा श्परमानंदश तक पहुँचने का मार्ग या साधन मानते हैं। परमानंद चूँकि एकांगी भाव से संभव नहीं है इसलिए वह जीवन के सर्वांगीण उच्च भावों के सम्मिश्रण की अपेक्षा करता है। जिस जीवन अथवा साहित्य में कोई एक अंग ही विशिष्ट होगा वह परमानंद के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता है। संभवतरू इसीलिए उन्होंने एस्कुलस, सोफ़ोक्लीज़, योरपडीज़ और होमर जैसे महान दुखांत रचनाकारों की रचनाओं का उदाहरण देते हुए कहा है कि उत्कर्ष साहित्य होने के बावजूद केवल एक तत्व की प्रधानता के कारण इन रचनाओं में औदात्य तक पहुँचने की क्षमता नहीं है। औदात्य तक पहुँचने के लिए वह प्रमुख रूप से पाँच तत्वों का होना आवश्यक बताते हैं दृ

1) महान विचार
2) प्रबल आभ्यंतर भाव
3) अलंकार तथा छंद
4) भव्य शब्द शिल्प विधान
5) प्रभावपूर्ण गरिमा

यानी इन तत्वों की परिपूर्णता और सम्मिश्रण से ही कोई रचना अपने औदात्य को प्राप्त और प्रकट कर सकती है। गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस इस उदात्तता का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

तुलसीकृत रामचरितमानस सदियों से न केवल भारतीय बल्कि विश्व में व्याप्त विभिन्न समाजों को नैतिक, व्यावहारिक और मानवीय गरिमा से परिपूर्ण जीवन का दिशा–निर्देश देता आया है। इतने कालखंड तक विशाल जनसमुदाय को ज्ञान एवं गरिमा के प्रकाश से प्रकाशित करते चले आने वाला ग्रंथ निश्चित ही केवल शब्दों और छंदों का सामंजस्य भर नहीं है वह समस्त मानवजाति के लिए आवश्यक मानवीय करुणा, प्रेम, सहृदयता, सम्मान और आदर्श का एक जाज्वल्यमान पुंज है। यह अकारण नहीं है कि श्नाभादास ने गोस्वामी तुलसीदास को कलिकाल का बाल्मीकि कहा था, स्मिथ ने इन्हें मुग़लकाल का सबसे महान व्यक्तित्व माना था, ग्रियर्सन ने इन्हें श्बुद्धदेव के बाद सबसे बड़ा लोकनायक कहा था, और यह तो बहुत बार कहा है कि उनकी रामायण (रामचरितमानस) उत्तर भारत की बाइबिल है।श

किसी कृति के क्लासिकल होने के लिए उसके विषय, विचार और शिल्प की प्रौढ़ता के साथ–साथ उसकी जनग्राह्यता भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती है। जनग्राह्यता से तात्पर्य है कि वह कृति आसानी से जनमानस में गृहीत हो जाए। अनेक ऐसी कृतियाँ हैं जो उच्चतम शिल्प और आदर्शों के बावजूद जन में अपेक्षाकृत कम व्याप्त है। वाल्मीकि कृत रामायण और तुलसीकृत रामचरितमानस को ही देखा जा सकता है। मूल वर्ण्य विषय वाल्मीकि की रामायण से निसृत होने के बाद भी रामचरितमानस सदियों से भारतीय जनमानस में गहरे व्याप्त है। इसका कारण एक ओर तो अवधी जैसी जनभाषा है तो दूसरी ओर रामादि का जननायकत्त्व।

अपने भाषिक सारल्य के कारण ही रामचरितमानस आमजन में भी कर्म, भक्ति, वेदांत, दर्शन का समुचित प्रसार कर सकी है। इस ग्रंथ के प्रारंभ में गोस्वामी तुलसीदास ने इसके प्रणयन का उद्देश्य श्स्वांतरू सुखायश माना है पर कवि का श्स्वांतश अथवा उसके हृदय की परिधि इतनी व्यापक है कि उसमें सार्वजनीनता का स्वतरू समावेश हो गया है अर्थात इस कृति का उद्देश्य श्सर्वजन सुखायश में रूपांतरित हो गया है। इसीलिए आध्यात्मिक वर्ण्य विषय होने के बावजूद अपने मूल में यह सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों को समेटे हुए एक उदात्त कृति बन गई और इनके पात्र किसी दैवीय या अध्यात्म पुरुष की जगह मानवीय गरिमा के उच्च आदर्शों से युक्त सामाजिक जन दिखाई देते हैं। रामचरितमानस का पारायण करते समय सहृदय रामादि पात्रों से दूर नहीं रह पाता है।

वह उनमें तदाकार और तल्लीन अनुभव करता है। यही कारण है कि रामचरितमानस के राम अपने देवत्व के कारण भारतीय जनमानस में उतने व्याप्त नहीं हैं जितने कि अपने सर्वसुलभ मानवीय रूप के कारण। न केवल राम बल्कि इसके अन्य पात्र जैसे दशरथ, सीता, कौशल्या, सुग्रीव, हनुमान आदि भी मानवीय गरिमा और कमजोरियों से एक साथ युक्त हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी रामचरितमानस के बारे में लिखते हैं कि, ष्मनुष्य के नित्य जीवन में घटने वाले ईर्ष्या–द्वेष, सुख–दुख और लोभ मोह के विकारों के भीतर से उन्होंने परम लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अपने पाठक को ले जाना चाहा । इसलिए उनका यह ग्रंथ शुष्क आचार संहिता या थोथे उपदेशों की पोथी नहीं है, वह मनुष्य जीवन की गहराई में उतरा है और अत्यंत सहज भाव से उसे रामोन्मुख करता रहा है। राम, जो मनुष्य की समस्त आशा–आकांक्षाओं का सर्वोत्तम केंद्र हैं वहां काम, क्रोध, द्वेष, मोह रूपी अंधकार की कल्पना नहीं की जा सकती । परंतु यह राम हमारे दैनंदिन जीवन के अनुभवों के भीतर से उजागर हुआ है। वह मनुष्य रूप में अवतरित हुआ है और मनुष्य की सारी कमजोरियों और विकारों के भीतर उज्जवल आलोक के रूप में निकलता चला गया है।[8] रामचरितमानस की यही विशेषता उसे श्रेष्ठता प्रदान करती है।

लोंजाइनस ने औदात्य के जो प्रमुख गुण या तत्व जैसे– महान विचार, प्रबल आभ्यंतर भाव, अलंकार तथा छंद, भव्य शिल्प विधान और प्रभावपूर्ण गरिमा आदि गिनाए हैं; वह रामचरितमानस में मौलिक तत्व के रूप में अनायास ही विद्यमान हैं। गोस्वामी जी जहां–जहां भक्ति, वेदांत, कर्म अथवा दर्शन और अध्यात्म आदि का वर्णन करते हैं वहाँ भी मूल में मानव, परिवार, समाज और सामाजिक सरोकार ही रहते हैं। ऊपर से भक्ति का जो प्रासाद दिखाई देता है मूलतः वह समाज और सामाजिक सद्भाव का होता है; अर्थात रामचरितमानस में भक्ति की कड़ियाँ केवल ईश्वर से नहीं जुड़ती हैं। वह मनुष्यमात्र से जुड़ती हैं जिसे देखे जाने की जरूरत है।

गोस्वामी तुलसीदास मानते हैं कि बिना हरिभक्ति के इस भवसागर से पार नहीं पाया जा सकता है। जिस तरह किसी सेतु पर चढ़कर चींटी जैसे छोटे जीव भी लंबी नदी आदि पार कर लेते हैं उसी तरह भक्ति के सेतु पर चढ़कर जीव भी भवसागर को प्राप्त कर लेता है। यही नहीं जिस मनुष्य के अंदर भक्ति भाव नहीं है वह जीते जी भी मृतक के समान है–

जिंहि हरि भगति हृदय नहीं आनी।
जीवत सव समान ते प्राणी

इसी प्रकार वह भक्ति को कभी कल्पवृक्ष तो कभी सैकड़ों कामधेनुओं के समान सिद्ध करते हैं। भक्ति अथवा राम के चरणों से सच्चे अनुराग को ही वह सच्चा स्वार्थ अथवा पुरुषार्थ मानते हैं–

स्वारथ सांच जीव कहुँ एहा।
मन क्रम वचन राम पद नेहा।।

और इस भक्ति का फल भी वर्णित करते हुए वह कहते हैं–

जा पर कृपा राम की होई।
ता पर कृपा करे सब कोई।।

यानी स्वयं राम की कृपा जिस पर हो जाती है उस पर बाकी सब की कृपा तो स्वयं हो जाती है। इसलिए राम की कृपा ही भवसागर से पार उतरने का एकमात्र उपाय है। पर यह रामकृपा मिलेगी कैसे? उत्तर देते हुए वह लिखते हैं भौतिकता और आध्यात्मिकता के प्रति विवेक से। अब यह विवेक कैसे प्राप्त होगा? वह उत्तर देते हैं सत्संग से–

बिनु सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।

और यह सत्संग कैसे प्राप्त होगा? राम कृपा से। यानी बिना राम की कृपा के मानव जीवन में सत्संग मिलना दुष्कर है। सुंदरकांड में भी विभीषण हनुमान से यही कहते हैं–

अब मोहि भा भरोस हनुमंता।
बिनु हरि कृपा मिलहि नहीं संता।।

यानी ईश्वर की कृपा से संत का संसर्ग और संतों के संसर्ग से ही ईश्वर की कृपा प्राप्त होती है। इसी के साथ ईश्वर की प्राप्ति हेतु अन्य जिन गुणों का वर्णन तुलसीदास करते हैं वह भी मूल रूप से सामाजिक सद्भाव के ही प्रेरक तत्व हैं। वह स्वयं राम के श्री मुख से कहलवाते हैं–

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

अर्थात जो व्यक्ति निर्मल मन वाला है, छल–छद्म से मुक्त है, वही मुझे प्राप्त कर सकता है। मुझे किसी भी प्रकार का कपट, छल, झूठ, बेईमानी आदि स्वीकार नहीं है। इस तरह हम भक्त, ईश्वर और भक्तप्रियता के मूल में जिन सद्गुणों को देखते हैं वह चाहे सत्संगति हो, विवेक हो, ईर्ष्या–द्वेष से मुक्त हृदय की आवश्यकता हो यह सभी गुण वस्तुतः भक्ति से कहीं अधिक एक निर्मल समाज के लिए आवश्यक हैं। इसी तरह जितने भी सिद्धांतों, अवधारणाओं, दर्शनों की बात गोस्वामी तुलसीदास करते हैं उसके मूल में सामाजिक सद्भावना के तत्व ही विद्यमान रहते हैं।

रामकथा के प्रत्येक प्रसंग मानव समाज को एक दिशा देते हैं जिस ओर आगे चलकर मानव न केवल इहलौकिक बल्कि पारलौकिक अवस्था को भी मंगलकारी बना सकता है। रामचरितमानस के प्रत्येक प्रसंग में विनय, शील, तप, त्याग, क्षमा, करुणा, विनम्रता, कृतज्ञता आदि गुण विद्यमान मिलेंगे। गोस्वामी तुलसीदास ने अतीत से ज्ञान लेते हुए, वर्तमान की कसौटी पर परखते हुए उसे भविष्योंमुखी बनाया

है। रामचरितमानस में प्रसंगों की वैविध्यता केवल वर्णन के स्तर पर ही नहीं है बल्कि वस्तुतः वे सामाजिक जीवन के विविध पड़ावों को रेखांकित करती हुई एक आदर्श समाज की निर्मित करती प्रतीत होती हैं। इस संबंध में डॉ० नगेंद्र लिखते हैं–ष्भाव वैविध्य गोस्वामी जी की सबसे बड़ी विशेषता है। एक ओर तो उन्होंने नाथ पंथियों के प्रभाव से नष्ट होती हुई जनमानस की विश्वासमयी रागतमिका वृत्तियों को राम भक्ति के माध्यम से पुनः पल्लवित किया और दूसरी ओर राम कथा के विविध प्रसंगों के माध्यम से राजनीतिक सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन के आदर्शों को जनता के सामने प्रस्तुत कर विशृंखलित हिंदू समाज को केंद्रित किया। उनकी भक्ति भावना कबीर आदि निर्गुण भक्तों की ज्ञानयोगमयी भावना की भांति रहस्यमयी नहीं है। वह सीधी, सरल एवं सहज साध्य है।'

राम सीता विवाह के समय धनुष–भंग का प्रकरण उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है। राम के औदात्य गुणों की दृष्टि से यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। धनुष–भंग होने के बाद राजा जनक के दरबार में भगवान परशुराम का आगमन होता है। शिव धनुष के खंडित होने के कारण उनकी शांति भी खंडित हो गई है। अत्यंत क्रोधित रूप में वह सभा में अवतरित होते हैं। सुंदर रक्तवर्णी मुख क्रोध के कारण और भी रक्तवर्ण हो रहा है। वह सहजता से भी देखते हैं तो मानो क्रोध कर रहे हों। वह राजा जनक से प्रश्न करते हैं–

अति ऋषि बोले बचन कठोरा।

कहुं जड़ जनक धनुष केहिं तोरा।

अर्थात उनके प्रश्न करने की शैली ही क्रोध से परिपूर्ण है। जनक जैसे परमज्ञानी पुरुष को भी वह मूर्ख कहकर संबोधित कर रहे हैं, कि मूर्ख जनक! बता यह धनुष किसने तोड़ा है, अन्यथा तेरा समस्त साम्राज्य मैं उलट कर तहस–नहस कर दूंगा। इतना क्रोध कि पृथ्वी, आकाश और पाताल के सभी देव, राजा, मुनि, नाग, किन्नर और नगर के स्त्री–पुरुष भयभीत हैं। पर यहां राजा जनक की विनम्रता और उनका धैर्य दृष्टव्य है। इस घटना से भी वह विचलित अथवा उद्धत नहीं होते हैं बल्कि शांतचित्त रहते हैं। तुलसी इस प्रसंग से यह संदेश देने की भी कोशिश करते हैं।

ठीक उसी तरह दूसरी ओर से शांतचित्त सच्चिदानंद आनंदघन श्रीराम सामने आते हैं। सर्वशक्तिमान परब्रह्म के अवतार श्रीराम किस प्रकार विनम्र होकर भगवान परशुराम के सम्मुख आते हैं वह अनुकरणीय है।

श्री राम कहते हैं–

नाथ संभुधनु भंजनिहारा।

होइहइं केउ एक दास तुम्हारा।

यानी हे नाथ! इस शिव–धनुष को तोड़ने वाला तो निश्चित ही आपका कोई सेवक होगा। क्या आज्ञा है? आप मुझसे कहें। कितनी विनम्रता और कितना शील। वस्तुतः गोस्वामी जी यहां पर मानवीय उदात्त संस्कृति के इसी रूप का प्रसार करना चाहते हैं जो जनमानस में पैठ कर उन्हें एक सम्यक और शीलयुक्त समाज के निर्माण की ओर उन्मुख करे।

इसी प्रकार के औदात्यपूर्ण प्रसंग रामचरितमानस में हमें जगह–जगह दिखाई देते हैं, चाहे वह राम–वन–गमन हो, या फिर राम–भरत प्रसंग हो, या शबरी–संवाद हो, हर जगह हमें मानवीय संवेदना और उदात्त मानवीय गुणों से पूर्ण प्रकाशपुंज दिखाई देता रहता है जिसके प्रकाश में हम एक बेहतर समाज की ओर आगे बढ़ सकते हैं। भारतीय संस्कृति को अतीत में अनेक प्रकार के ख़तरों का सामना करना पड़ा है। पर उसके बावजूद इस संस्कृति में कुछ तो ऐसे तत्त्व विद्यमान हैं जो इसके लिए संजीवनी का काम करते हैं और हर परिस्थिति में इसकी जिजीविषा शक्ति बनाए रखते हैं। वे तत्त्व दरअसल यही विनय, शील, तप, त्याग, क्षमा, करुणा, विनम्रता, कृतज्ञता आदि गुण हैं जिनकी ऊपर चर्चा की गयी है। विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में कहें तो, ष्भारतीय संस्कृति का एक रूप उर्ध्वमूल भी है। यह बरगद है, न्यग्रोध है। इसका विकास ऊपर के शाखाओं में तो होता है नीचे भी यह शाखाएं फेंकता है। यह अनेकमूल संस्कृति है, एकमूल संस्कृति नहीं। यह मूल सहित उखड़कर भी नष्ट नहीं होती। कबीर के शब्दों में यह 'मरजीवा' है। तांत्रिकों के शब्दों में 'छिन्नमस्ता' है। वैष्ण व भक्तों के शब्दों में श्दरद दिवानीश है, गीता के शब्दों में यह ब्रह्महवि है। इसमें जीने की अदम्य आकांक्षा है।" इस समाज और संस्कृति को बनाए रखने में रामचरितमानस जैसे उदात्त ग्रन्थों का बड़ा अमूल्य योगदान रहा है।

संदर्भ ग्रंथ–

The new Encyclopaedia Britannica- Volume7, pg. 468

श्रीवास्तव, रवि, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, ई–पाठशाला अध्ययन सामग्री, पृष्ठ–3

द्विवेदी,हजारीप्रसाद, हिंदी साहित्यरू उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ–125

भाषा, साहित्य और देश, हजारी प्रसाद द्विवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ 79

सं० नगेन्द्र,हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2005,पृष्ठ 176

मिश्र,विद्यानिवास, भारतीय संस्कृति के आधार, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृष्ठ 12

–डॉ. अंजन कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर

ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज,दिल्ली।

❑❑❑

National Journal of
Hindi & Sanskrit Research
(In: Sanskrit, Hindi and English Language)
आईएसएसएन संख्या: 2454 - 9177
प्रभाव कारक (आरजेआईएफ): 7.2
समकक्ष समीक्षा जर्नल
लेखक हेल्पलाइन: +91 - 8368 241 690
क्रुतिदेव फ़ॉन्ट्स डाउनलोड करें

राष्ट्रीय हिंदी एवं संस्कृत शोध पत्रिका

National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2021; 1(36): 96-98
© 2021 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ.अंजन कुमार
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Correspondence:
डॉ.अंजन कुमार
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारतीय सूफी दर्शन के वैचारिक आयाम

डॉ.अंजन कुमार

हिंदी कविता में सूफी कविता का एक गौरवशाली इतिहास एवं लोकप्रियता का समृद्धय जुड़ा हुआ है। सूफी कविता धार्मिक कविता के रूप में विकसित हुई थी, लेकिन धीरे-धीरे इसकी संवेदना में भारतीय जनता की संवेदना का स्वर सुनाई देने लगा। मध्यकाल में, विशेषकर अपने आरंभिक भक्तिकालीन दौर में सूफी कविता ने जो लोकप्रियता हासिल की थी वह केवल धर्म विशेष से जुड़कर नहीं आ सकती थी। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि सूफी कविता का संबंध इस्लाम की एक शाखा से जुड़े होने के बावजूद दरअसल भारतीय संस्कृति एवं भारतीय संवेदना के प्रसार से अधिक जुड़ा हुआ दिखाई देता है। भक्ति काल के निर्गुण काव्य शाखा में संत कविता के समान ही सूफी कविता ने भी आम जनता को सबसे अधिक तरजीह देते हुए ऐसी अभिव्यक्ति की जो सीधे-सीधे तौर पर जनता से जाकर जुड़ता हुआ दिखाई देता है।

जैसा कि हम यह जानते हैं कि सूफी कविता मुस्लिम संप्रदाय के एक शाखा के रूप में स्थापित हुई थी। इस्लाम के प्रसार एवं विकास के बाद विभिन्न प्रकार के परिवर्तन इस्लामी धाराओं में देखने को मिले थे उनमें से एक प्रमुख धारा सूफी संतों की धारा थी, "जिनमें इस्लाम के प्रमुख अथवा मुख्यधारा के उलट शांति एवं सद्भाव को स्थापित करते हुए आध्यात्मिकता, रूहानियत, कविता एवं संगीत के माध्यम से जनता तक पहुंचने पर बल दिया जाता रहा। यही कारण है कि सूफी से संबंधित कई कलाएं कालांतर में विकसित होती हुए दिखाई देती हैं जिसमें संगीत का सर्वोच्च स्थान है। यह सूफी संत अपने प्रसार एवं प्रचार के लिए संगीत का सहारा लेते थे और अपने लिखे हुए गीतों को जगह-जगह गाते हुए उनका प्रसार करते थे।"[1] हिंदी कविता में सूफी काव्य धारा का विकास इसी क्रम में होता हुआ दिखाई देता है जहां विभिन्न सूफी संतों ने अपने-अपने लक्ष्यों के अनुरूप विभिन्न प्रकार के काव्य रचनाओं की रचना की तथा उससे जनता के मध्य गाते हुए पहुंचाने का कार्य किया।

सूफी धर्म का विकास इस्लाम के विकास से संबंधित है अतः पारंपरिक सूफी कविता के पुराने चिह्न में मध्य एशियाई देशों में दिखाई देता है। इस्लाम का उद्भव सातवीं शताब्दी में हुआ था, वही सूफी संप्रदाय का विकास आठवीं से 9वीं शताब्दी में देखने को मिलता है। सबसे पहले यह इरान और इराक से होते हुए विभिन्न प्रकार के माध्यमों से जुड़ता हुआ भारत भी आ पहुंचा। भारत में प्रसार का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि मुस्लिम आक्रांताओं के साथ कई बार संत भी आ जाते थे, और वे अनुकूल परिस्थितियां पाकर यही रह गए और लौटे नहीं।

National Journal of
Hindi & Sanskrit Research
(In: Sanskrit, Hindi and English Language)
आईएसएसएन संख्या: 2454 - 9177
प्रभाव कारक (आरजेआईएफ): 7.2
समकक्ष समीक्षा जर्नल
लेखक हेल्पलाइन: +91 - 8368 241 690
क्रुतिदेव फ़ॉन्ट्स डाउनलोड करें

राष्ट्रीय हिंदी एवं संस्कृत शोध पत्रिका

42	ज्योतिष विज्ञान में ग्रह रोग के लिए ग्रह शांति उपाय के रूप में सुझाई गई आयुर्वेदोक्त औषधियों का आलोचनात्मक अध्ययन श्रीमती वाई.वी. राज्यलक्ष्मी राव	148-154	
43	अमृतलाल नागा के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन डॉ. अंजन कुमार	155-158	
44	विष्णुधर्मोत्तरपुराणे	159-	

National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2021; 1(39): 155-158
© 2021 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. अंजन कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर,
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Correspondence:
डॉ. अंजन कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर,
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

अमृतलाल नागर के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. अंजन कुमार

भारत की सामाजिक व्यवस्था जटिल और विविधतापूर्ण हैं उसमें नित नए सामजिक परिवर्तन होते रहते है। हिंदी साहित्य में निरंतर इन परिवर्तनों की अभिव्यक्ति होती रहती है उपन्यास भी एक ऐसा ही माध्यम है जिसमें साहित्य के शुरुआती दौर से ही रचनाकर अपने समाज, वर्ग, जाति आदि की संवेदनाएं, दुःख-दर्द, हर्षोल्लास, संस्कृति, भाषा, राष्ट्रिय एकता, इतिहास आदि को अभिव्यक्त करता है। वैश्वीकरण के दौर में उपन्यास के इन प्रतिमानों के विश्लेषण के लिए समाजशास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता है। समाजशास्त्रीय अध्ययन सिद्धांतों के माध्यम से समाज, वर्ग, जाति, का अध्ययन करता है। "समाजशास्त्र द्वारा समाज में मनुष्य की स्थिति और गति का वस्तु परक अध्ययन किया जाता है। सामाजिक संस्थाओं और सामाजिक प्रक्रियाओं के माध्यम से सामाजिक स्थिरता और गतिशीलता के अध्ययन से समाजशास्त्रीय चिंतन का गहरा संबंध है"[1]। साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन साहित्य की गतिशीलता के बीच उसकी परिवर्तनशीलता का भी अध्ययन करता है । साहित्य के समाजशास्त्र के विभिन्न रूपों के बीच साहित्य की सामाजिकता की खोज सम्बन्धी दृष्टियों और उसकी पहचान की पद्धतियों के बारे में मतभेद जरुर है, लेकिन साहित्य के स्वभाव और प्रभाव की सामाजिकता के विषय में नहीं।

जब मनुष्य को उसकी पहचान – रंग-रूप, जाति, भाषा, क्षेत्र, रीति-रिवाज, धर्म, संस्कृति आदि सामाजिक अस्मिता के साथ पहचानते है तो वह 'समाजशास्त्रीय अध्ययन' की ओर प्रवृत्त होना होता है, जिसमें जीवन का सम्पूर्ण सौंदर्य उद्घटित होता है। यही साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की मजबूत जमीन है। ऐसा सामाजिक अध्ययन, जिसमें कृति की सामाजिक अस्मिता की पहचान करते हैं। प्रो. मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं-"साहित्यिक समाजशास्त्र का लक्ष्य कृति की केवल सामाजिक व्याख्या नहीं है। यह काम दूसरी आलोचनात्मक पद्धतियों में भी होता है। उसका लक्ष्य साहित्यिक कृति की सामाजिक अस्मिता की व्याख्या है। साहित्यिक कृति की सामाजिक अस्मिता रचना के सामाजिक संदर्भ और सामाजिक अस्तित्व से निर्मित होती है, इसलिए साहित्य के समाजशास्त्र में उस पूरी प्रक्रिया को समझने की कोशिश होती है, जिसमें कोई रचना साहित्यिक कृति बनती है। इस प्रक्रिया में सामाजिक संरचना तथा संस्कृति संस्थानों की भूमिका अहम होती है।"[2] इस पूरी प्रक्रिया को लुसिए गोल्डमान विश्वदृष्टि की संकल्पना देते है। विश्वदृष्टि की धारणा की पुष्टि के लिए गोल्डमान ट्रांस- इंडिविजुअल सेल्फ की अवधारणा प्रस्तुत करते है जिसमें किसी भी कृति के सृजन का श्रेय रचनाकारों को नहीं अपितु उस चेतना से है जिसके माध्यम से पुरे सामाजिक वर्ग की मानस-संरचना अभिव्यक्त होती है।

मैनेजर पाण्डेय 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' में लिखते हैं। "पिछले सौ वर्षों में संस्कृति की भौतिकवादी व्याख्या के आधार पर कलाओं का जो समाजशास्त्र विकसित हुआ है उनका एक रूप है

साहित्य
211

समकालीन भारतीय साहित्य

साहित्य अकादेमी की द्वैमासिक पत्रिका
सितंबर-अक्टूबर, 2020

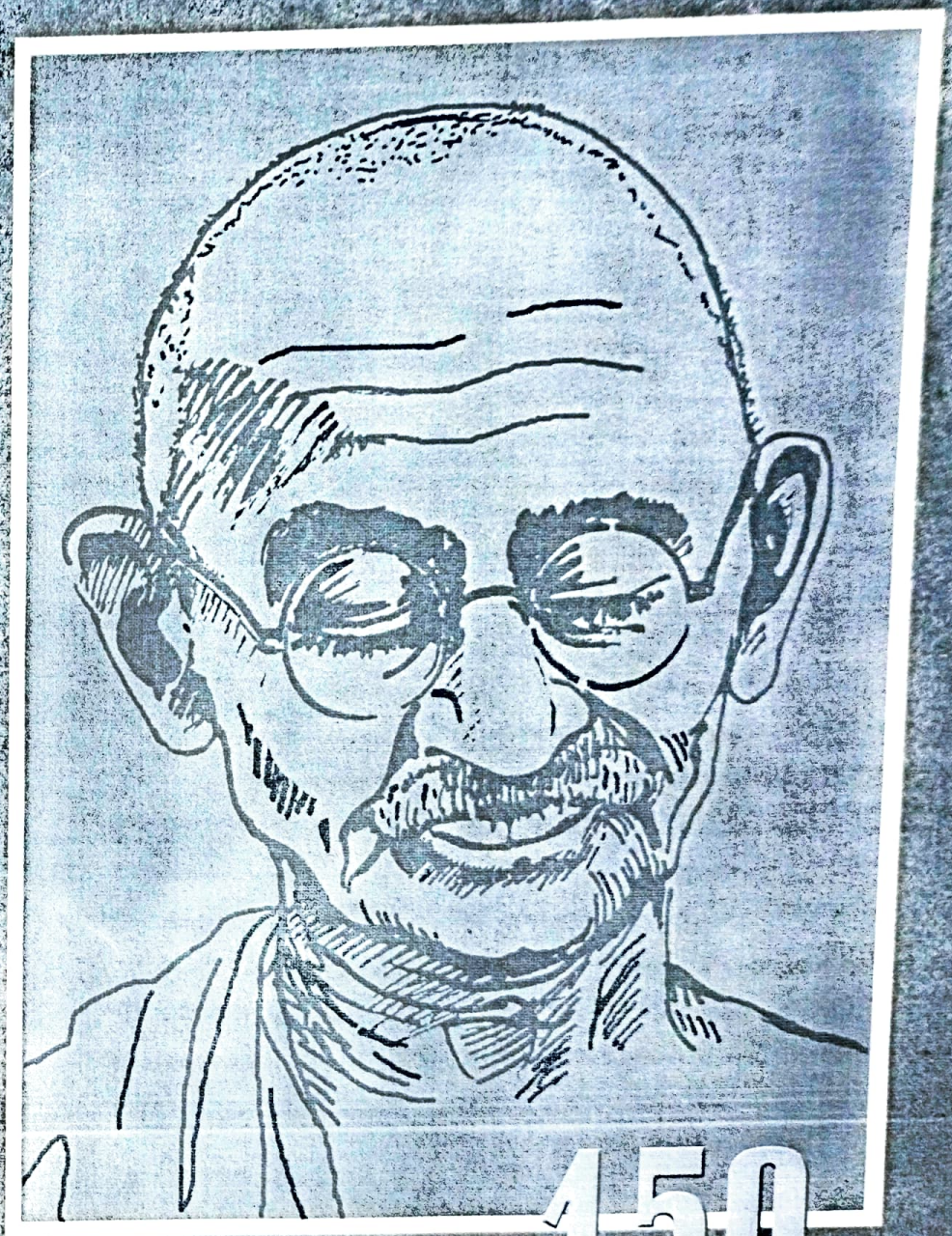

समकालीन भारतीय साहित्य

वर्ष 41, अंक 211, सितंबर-अक्टूबर, 2020

005 **संपादकीय :** नायकों की खामोश इच्छाएँ

सृजन संसार

009 **प्रेमपाल शर्मा :** महात्मा गाँधी और भारतीय भाषाएँ

017 **शिवनारायण :** रेणु-न दाएँ मुड़, न बाएँ, सीधे चल

023 **हरेंद्र सिंह :** हिमवंत का गायक चंद्रकुँवर बर्त्वाल

028 **बुलाकी शर्मा :** चंद्र-राजस्थान का कथा शिल्पी

कविता

035 **जय गोस्वामी :** बुकुन के दोस्त, नरु काका (बाङ्ला)

038 **मदन कश्यप :** चाहता हूँ, कहीं नहीं जाऊँगा

039 **कीर्ति नारायण मिश्र :** क्या तुम ही थे, नागार्जुन

042 **विजय चंद्र :** खलबली, मैं और मेरी कविता (तेलुगु)

045 **राकेश रेणु :** नए मगध में, आओ, प्रेम

048 **राकेश शर्मा :** बचपन, ममता विहीन, स्त्री की देह

050 **दिनकर कुमार :** ब्रह्मपुत्र तट पर छठ पूजा

052 **चैतन्य त्रिवेदी :** चिड़िया से ज़्यादा, पेड़ और स्मृतियाँ

054 **एल. तोमस कुट्टी :** भूसी (मलयाळम्)

055 **आत्मा रंजन :** कुटुवा, आँगन में चिड़िया

059 **वर्तिका नंदा :** जेल, जेल में ज़िंदगी, जेल की औरत

061 **वीरेंद्र आज़म :** तुम नहीं थी, फ़ुटपाथ, अँधेरा जीत गया

063 **वैद्यनाथ उपाध्याय :** वक़्त की हवा (नेपाली)

कहानी

064 **सुदर्शन वशिष्ठ :** पीला गुलाल, वसंत और पतझड़

077 **राजेश जैन :** ब्लैक होल

086 **विवेक मिश्र :** जन्म-जन्मांतर

094 **गीताश्री :** बलम कलकत्ता

101 **मधु आचार्य :** गोमती की गंगा (राजस्थानी)

106 **कान्ता रॉय :** रानो

114 **बलजीत सिंह रैना :** प्लस वन माइनस टू (पंजाबी)

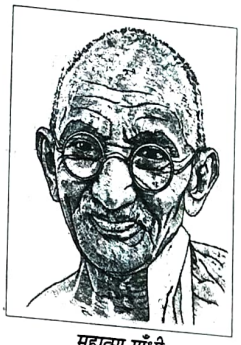

महात्मा गाँधी

फणीश्वरनाथ रेणु

चंद्रकुँवर बर्त्वाल

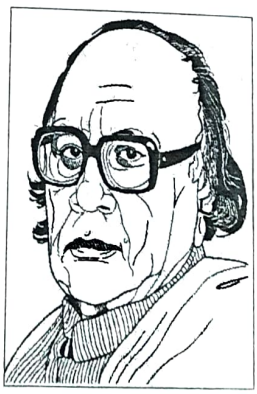

यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'

ISSN : 2581-3145

जुलाई 2019

आलोकपर्व

वर्ष : 6 अंक : 7

RNI NO. DELBIL/2013/50974

कीमत : 40 रुपये

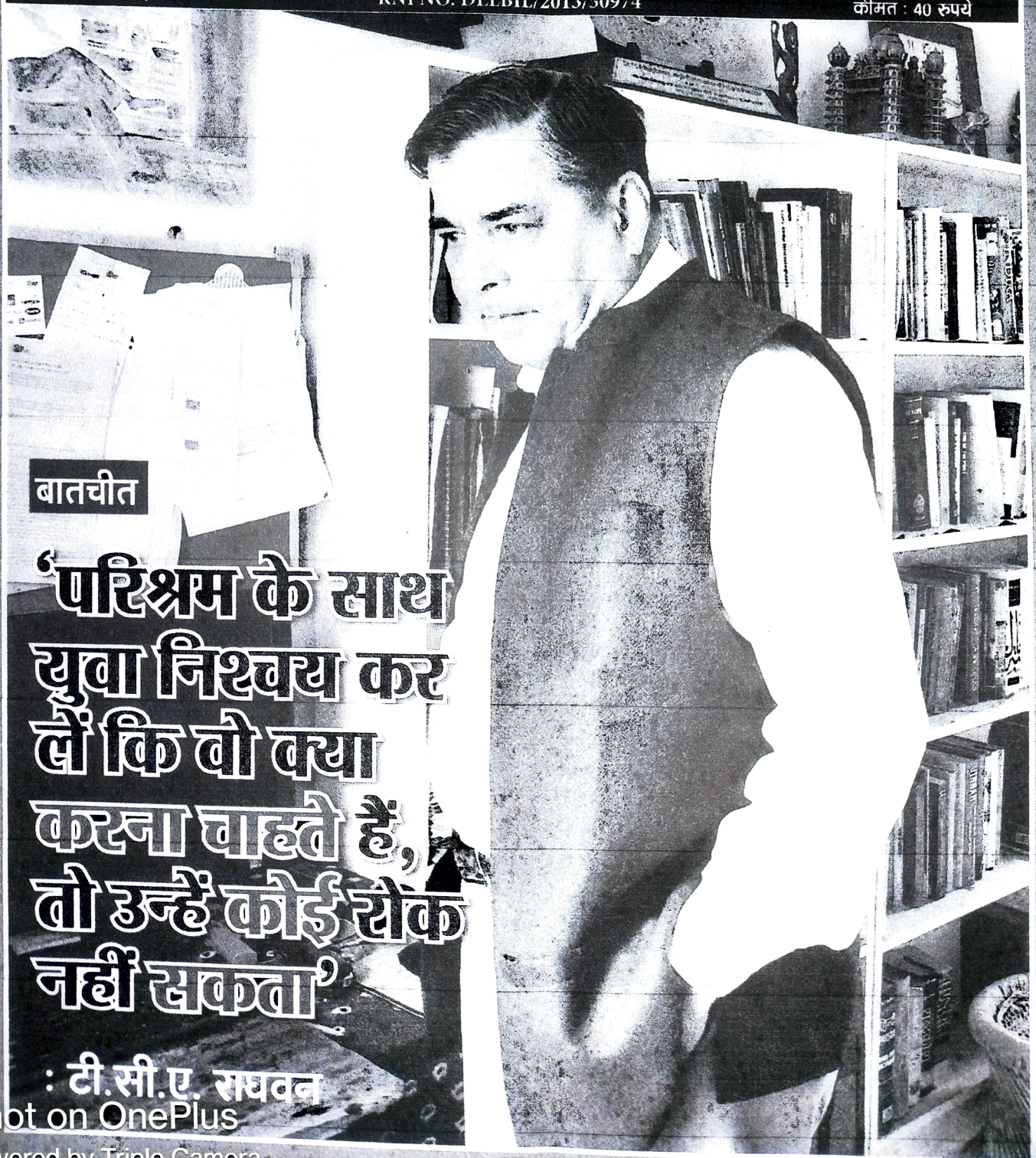

बातचीत

'परिश्रम के साथ युवा निश्चय कर लें कि वो क्या करना चाहते हैं, तो उन्हें कोई रोक नहीं सकता'

: टी.सी.ए. राघवन

Shot on OnePlus
Powered by Triple Camera

हमारे राजेन्द्र धस्माना जी

हरेन्द्र असवाल

राजेन्द्र धस्माना को कुछ लोग कवि के रूप में जानते हैं,कुछ संपादक के रूप में,कुछ नाटककार के रूप में, कुछ मित्र के रूप में, कुछ घुमक्कड़ के रूप में, कुछ अनुवादक के रूप में, कुछ आन्दोलनकारी के रूप में, और सबसे ज्यादा पहाड़ के पत्रकार, पत्रकार और उनके आदर्श और संरक्षक के रूप में जानते हैं। बगेली, चौंदकोट से देहरादून, देहरादून से हापुड़, हापुड़ से दिल्ली, दिल्ली से लखनऊ, लखनऊ से दिल्ली। पत्रकार के रूप में हिन्दुस्तान टाइम्स राजमोहन गांधी के साथ एक ही दिन शुरू किया, वे ऊपर गये धस्माना जी ऊपर से नीचे और प्रूफ रीडिंग तक चले गये। गुस्सें में मैनेजर के पेट डॉग, जो आफिस में भी साथ रहता, धस्माना जी का गुस्सा उस पर निकल गया और वे नौकरी से बाहर हो गये, उन्होंने मुकदमा किया। जीते वापस नौकरी पर गये और फिर रिजाइन लिखा, और मैनेजर को मारा, ये कहते हुये, तुम्हारी औकात नहीं मुझे निकालो। मैं तुम्हें अपने जीवन से निकालता हूँ और वापस घर आ गये। फिर भारत सरकार के प्रकाशन विभाग की नौकरी की लखनऊ चले गये। दूरदर्शन में समाचार संपादक हुए,और आखिर में गांधी वांगमय के संपादक के रूप में सेवा निवृत्त। ये सारी सूचनाएँ मुझे उनके साथ रहने से ही पता चली हैं।

मैं उन्हें 1986 से जानता था। मैं 1980 में दिल्ली आया 12वीं के बाद 1985 में एम ए किया। मोतीलाल नेहरू कालेज का छात्र था। वहीं डॉ रत्नाकर पांडे ने एम ए के बाद गेस्ट लेक्चरर के रूप में रख लिया। 1986 में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में एम फिल में एडमिशन हो गया, साथ ही जूनियर और सीनियर रिसर्च फैलोशिप नेट पास हो गया और आगे की पढ़ाई शुरू हुई। एम फिल में चन्द्रकुंवर बर्त्वाल की कविताओं पर काम करने लगा। इसी बीच उत्तराखंड आन्दोलन से जुड़ा और यहीं कहीं धस्माना जी से पहली मुलाकात हुई ठीक से पता नहीं कब और कैसे?

इसी आन्दोलन के दौरान उत्तराखंड संघर्ष वाहिनी के डॉ शमशेर सिंह बिष्ट, डॉ शेखर पाठक, प्रदीप टम्टा, एडवोकेट आर. पी. तिवारी आदि कई लोगों से भेंट हुई।

धस्माना जी की जिस दिन मृत्यु हुई किसी ने फोन नहीं किया मैं कालेज की परीक्षाओं में व्यस्त था शाम को धस्माना जी की मृत्यु और अन्तिम संस्कार का पता लगा। बस तब से अपने जानने वालों से मन उचाट हो गया, किसी ने तो बताया होता, हर सफर का साथी अन्तिम सफर पर साथ नहीं दे पाया। इसी बात का मलाल जीवन भर के लिए रह गया।

धस्माना जी पहले सरोजिनी नगर में रहते थे बाद में, रामकृष्ण पुरम सेक्टर दो में। यहीं मेरी उनसे घर पर पहली विधिवत मुलाकात हुई। मुलाकात चन्द्रकुंर बर्त्वाल की कविताओं के सन्दर्भ में हुई। जब मैं काम कर रहा था तो उमाशंकर सतीश की पुस्तक चन्द्र कुँवर बर्त्वाल की कविताएँ मेरे हाथ आई वही मेरे काम का प्राइमरी सोर्से था। तब मैं उन्हें नहीं जानता था, जब विषय का निर्धारण हुआ तो मेरे गुरुदेव प्रोफेसर केदारनाथ सिंह ने मुझे आगाह किया था कि पहले भी दो लोग इसे छोड़ चुके हैं, सामग्री न मिलने के कारण, लेकिन मुझे भरोसा था सामग्री मैं इकट्ठा कर लूँगा। इसी सन्दर्भ में मैं उनसे मिला और मुझे तो जैसे खजाना ही मिल गया। तब से उनके साथ अनेकों यात्राएँ की। जागर संस्था का सदस्य बना बहुत कुछ उनसे सीखा। सरोजिनी नगर भारत सेवक समाज में नाटकों की रिहल्सर होती हम वहाँ होते। अपने एम फिल के सन्दर्भ में मैं अज्ञेय जी से बसन्त विहार में उनके घर पर मिला। 2, अप्रैल 1987 को। अज्ञेयजी ने मुझे नया प्रतीक और रितम्बरा काव्य संग्रह के बारे में बताया और कहा पहले अपना होम वर्क करलो, उनके गाँव घूम आओ फिर बात करेंगे। मैं तीन अप्रैल को रात्रि बस से श्रीनगर गढ़वाल चला गया सुबह गढवाल विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में मुझे जाना था लेकिन वहाँ परीक्षा हो रही थी मुझे जाने नहीं दिया। मैं जे एन यू से एक पत्र ले के गया था जब उन्होने मुझे मना किया तो मै तत्कालीन वी सी डॉ बोड़ाई से मिला,उनको पत्र दिखाया और फिर पुस्तकालय गया, लेकिन उस समय वहाँ पुस्तकों के नाम पर कुछ भी नहीं था। नीचे परीक्षाएँ चल रही थी ऊपर एक कमरे पुस्तकें बिना किसी कैडलॉक के थी पहले तो मैं परेशान था कि ऐसे में क्या मिलेगा, लेकिन जो साथ गये थे उन्होंने बताया हिन्दी की किताबें इन अलमारियों में हैं तो आधा घंटे में ही सब देख लिया वहाँ कुछ नहीं था। वहीं मेरी मुलाकात डॉ हरिमोहन शर्मा से हुई,वे वहाँ विभागाध्यक्ष थे रात को मैंने उनके घर भोजन किया, उन्होने मुझे दो किताबें दी उनमें 'नाट्यनन्दिनी' और 'विराट हृदय' शंभु प्रसाद बहुगुणा जी की जो चन्द्र कुँवर बर्त्वाल के मित्र थे की लिखी हुई। पाँच अप्रैल को जब उठा तो अखवार में अज्ञेय जी की आकस्मिक मृत्यु की सूचना पढ़ी, मन एक दम उदास हो गया। कहाँ तो परसों ही उनसे मिला आगे की रणनीति बनाई और कहाँ यह सूचना। मन काफी दुखी था मैं श्रीनगर से स्यूपुरी दीदी के घर चला गया अगले दिन चन्द्र कुँवर बर्त्वाल के पैत्रिक गाँव मालकोटी पहुँचा। वहाँ उनके परिजनों से मिला लेकिन सामग्री कुछ

Shot on OnePlus
Powered by Triple Camera

Shot on OnePlus

ISSN : 2581-3145

दिसम्बर 2019

आलोकपर्व

वर्ष : 6 अंक : 9

RNI NO. DELBIL/2013/50974

कीमत : 40 रुपये

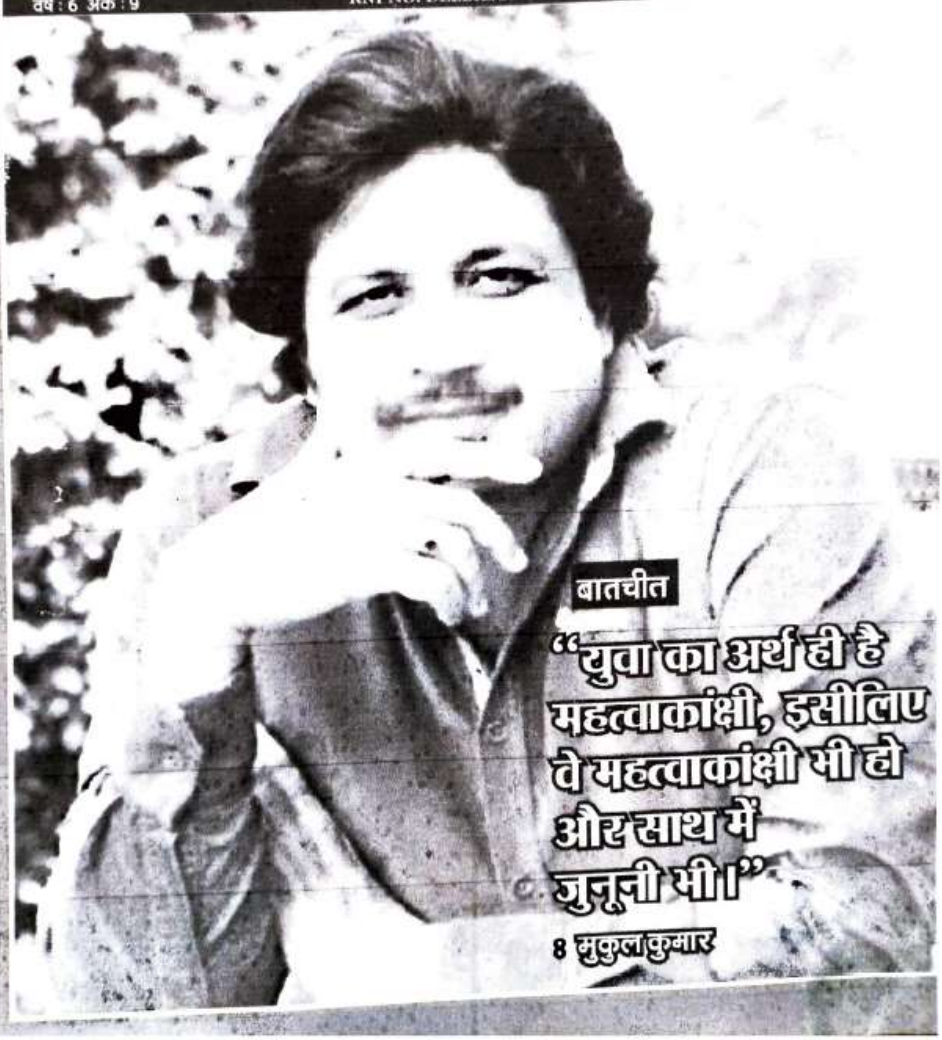

बातचीत

"युवा का अर्थ ही है महत्वाकांक्षी, इसीलिए वे महत्वाकांक्षी भी हो और साथ में जुनूनी भी।"

: मुकुल कुमार

भारत और हिन्दी की तीन सदी तीन गुजरातियों के नाम

डॉ हरेन्द्र सिंह असवाल

इन तीन गुजरातियों, दयानन्द सरस्वती,मोहन दास कर्मचन्द गांधी और नरेन्द्र दामोदर दास मोदी के साथ ही, गुजरात के औद्योगिक घरानों ने भी हर समय के ज नायकों का साथ दिया। गूजरमल मोदी,पद्मपत सिंघानियां, के के बिडला, धीरूभा अंबानी,मुकेश अंबानी और अडानी ये भी लगभग उसी धरती से आते हैं भारत के पश्चिमी हिस्से से जिन्होंने व्यापार की दुनियाँ में अपना मुकाम हासिल किया। आधुनिक भारत के निर्माण में इन लोगों को भी शामिल किये बिना हम किसी भ मुकाम पर नहीं पहुँच सकते।

भारत की तीन सदियाँ तीन गुजरातियों के नाम की जा सकती हैं 19वीं शताब्दी में दयानन्द सरस्वती, बीसवीं शताब्दी में मोहनदास कर्मचन्द गांधी और इक्कीसवीं शदी में नरेन्द्र दामोदर दास मोदी। बहुत से विचारक मेरी बात से असहमति व्यक्त कर सकते हैं मैं उनकी असहमति को अपने विचार में स्पेस देना चाहूँगा ठीक वैसे ही जैसे हमारी सनातन परंपरा चार्वाकों को स्थान देती रही है। हमारे पुराने चिंतक बहुत ही उदार चरित के लोग थे अन्यथा अन्य धर्मावलम्बियों की तरह वे भी विरोधियों को समाप्त कर देने की सीख देते,पर उन्होंने उन्हें भी मान्यता दी और प्रतिपक्ष को भी अपना लिया।

भारत के आजादी के आन्दोलन को हम बिना धर्मसुधार आन्दोलन, जो उनसे पूर्व हुए थे, के बिना नहीं समझ सकते। बंगाल का रिनेसां,इस कड़ी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राजाराम मोहन राय,ईश्वरचन्द्र विद्यासागर,रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द ने जहाँ बंगाल को चेतनीकृत किया,वहीं पश्चिमी भारत में दयानन्द सरस्वती ने अकेले ही यह बीड़ा उठाया। यहाँ यह बात भी ध्यान देने की है कि बंगाल के विचारक अपनी भाषा के मोह से बाहर नहीं निकले। विवेकानन्द ने भी हिन्दी की जगह अंग्रेजी को चुना। जबकि दयानन्द सरस्वती अपनी मातृभाषा को छोड़कर हिन्दुस्तानी या हिन्दी को अपनाकर पूरे उत्तर भारत को प्रभावित और जागरित करते हैं। यही बात दयानन्द सरस्वती को एक व्यापक स्वीकृति प्रदान कराती है। यह बात बहुत ही विचारणीय है कि जहाँ बंगाल का सांस्कृतिक आन्दोलन पश्चिम की ओर नहीं बढ़ता वहीं पश्चिम का आन्दोलन पूरब तक पहुँचता है। इसके पीछे भारतीय संस्कृति और भारत की भौगोलिक परिस्थितियां बड़ा काम करती हैं। भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही पूरब को बढ़ी। जावा,सुमात्रा, बाली, इंडोनेशिया, फिलीपीन्स में प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनेकों रूप मिलेंगे। भारत की भूमि में जो भी धर्म और धर्म सुधार आन्दोलन हुए वे पूर्व की ओर बढ़े। इसके पीछे बहुत ही वाजिब कारण थे। पश्चिम की तरफ उस समय फारस, यूनान और मिस्र जैसी संस्कृतियाँ थी जो अपने स्वरूप में बहुत ही कठोर और अन्तर्मुखी थी। यह कठोरता की दीवार वे नहीं तोड़ पाये। पश्चिम के विचारक और संस्कृति किसी अन्य विचार तो क्या अपने अन्दर से भी विरोधी आवाज को हर संभव दबाने का प्रयत्न करते रहे हैं। उन्होंने तलवार के बल पर राज किया और जिसने विरोध किया उसे मौत के घाट उतार दिया। ऐसे अनेकों प्रमाण दिये जा सकते हैं। सुकरात से लेकर गैलीलियो तक इसके प्रमाण हैं। दूसरी ओर भारतीय परंपरा में किसी भी धर्मविरोधी विचार या विचारक को फाँसी नहीं दी गई। इसलिये लगता है भारतीय धर्म और दर्शन पश्चिम की ओर बढ़ने की बजाय पूरब की ओर बढ़ा। पश्चिम की दीवार को न उसने तोड़ने का प्रयास किया न ही उसमें सेंध लगाने का प्रयत्न किया। यही नहीं कई अन्य तर्क भी दिये जा सकते हैं। मेरा उद्देश्य यहाँ तर्क देना नहीं बल्कि एक सामान्य विचार की ओर आपका ध्यान खींचना है।

हिन्दू धर्म प्राचीन समय से ही पूरब की ओर बढ़ा। राम कथा और विष्णु के स्वरूप के अनेक वर्णन इन पूर्वी द्वीपों में देखने को मिल जायेंगे। प्राचीन भारत जिसे जम्बूद्वीप भारतखंडे कहा गया, की सीमा अफगानिस्तान तक फैला है। यहाँ तक हिन्दू धर्म भी फैला। बौद्ध धर्म भी वहीं तक फैला। फारस की खाड़ी को उसने भी पार नहीं किया। वह तिब्बत के रास्ते चीन तक गया । इससे मेरे तर्क को बल मिलता है कि भारतीय चिंतन क भी पश्चिम की ओर नहीं बढ़ा। इसके पीछे एक र और काम कर सकता है कि जो भी आक्रमण भा पर हुए वे पश्चिम से ही हुए इसलिये और पा के बलपूर्वक स्वरूप को कभी भारतीय मनीष स्वीकार नहीं किया। जिसके गाँव ही नहीं ज उसका नाम ही क्या लेना, वाली कहावत यहाँ चरितार्थ होती रही।

दयानन्द सरस्वती ने पूरे भारत का भ्र किया, देश को जाना और उसकी धर्मभीरु ज की कमजोरियों को समझने का काम किया। सं की प्रथम शर्त ही गृह त्याग है, दूसरी देश या भ्रमण है, तीसरी लोक जागरण है। इन परिस्थियों ने दयानन्द सरस्वती को देश के ज मन को पहचानने में मदद की। उन्हें लगा इस को अगर कोई भाषा एक सूत्र में बाँध सकती है वह हिन्दी है। वे मूलतः गुजरात के टंकारा गाँ 1824 में पैदा हुए। उन्होंने धर्मशास्त्र और सं का अध्ययन किया लेकिन संन्यास लेने और प ने उन्हें यह सीख दी कि अगर देश में जा का अभियान चलाना है तो उसके लिए हिन्द सर्वाधिक उपयुक्त भाषा है। दयानन्द ने चौदह की अवस्था में संन्यास ले लिया था,उसके बाद समय अपने मृत्यु 1883 तक वे धर्म सुधार लोक जागरण में लगे रहे। उन्होंने अपना महत्व ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश " हिन्दी में लिखा,हिन्द ही अपने व्याख्यान दिये, हिन्दी में ही लोकजा का काम किया और हिन्दी के माध्यम से ही अं हुकूमत का विरोध किया। उनके द्वारा स्थ स्कूल दयानन्द एंग्लो वैदिक स्कूल भी मूल रू

आभ्यंतर

लोक, भाषा, विश्व साहित्य और समकालीन वैचारिकी का मंच

AABHYANTAR

PEER REVIEWED AND REFEREED JOURNAL

IIJIF INDEXED-74

GIF IMPACT FACTOR- 2.0032

ISSN:2348-7771

अंक 17 अक्टूबर-दिसंबर 2020

संस्थापक

अखिलेश कुमार द्विवेदी

(संस्कृत शिक्षक, ग्राम-हंटरगंज, जिला-चतरा, राज्य-झारखण्ड)

परामर्श

प्रो. अनिल राय

(हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ. मौना कौशिक

साहित्यकार और प्रख्यात कवयित्री

(सोफिया विश्वविद्यालय, बुल्गेरिया)

डॉ. विनोद तिवारी

(हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ. रामनारायण पटेल

(हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ. सुधांशु शुक्ल

(हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ. राजेश शर्मा

(हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)

डॉ. यांचा पाण्डेय

(हिंदी विभाग, रामनारायण उच्च महाविद्यालय,

विनोबा भावे विश्वविद्यालय, झारखण्ड)

डॉ. पारसेन्द्र पंकज

(सहा. प्रो. दिल्ली विश्वविद्यालय)

Shot on OnePlus
Powered by Triple Camera

ार (AABHYANTAR. PEER REVIEWED JOURNAL) अंक 17 अक्तूबर-दिसंबर 2020 ISSN:2348-7771

प्रगतिशील कवियों की नारी सम्बन्धी दृष्टि

डॉ. हरेन्द्र सिंह (एसोसिएट प्रोफेसर)
हिंदी विभाग, ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रगतिशील कविता में नारी को पहली बार एक वर्ग के रूप में मान्यता मिली। नारी को अनेक युगों में अनेक रूपों में शोषित और बन्दी जीवन बिताना पडत्रा है। यद्यपि आज भी यह बन्धन समाज से एक दम उठ गया हो ऐसा तो नहीं है लेकिन फिर भी नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक अवश्य हुई। नारी को हमारे समाज में अब से पहले यदि कोई आदर्श रूप मिला भी था तो वह यही था कि 'नारी तुम केवल श्रृद्धा हो', जबकि स्थिति इसके ठीक विपरीत थी। श्रृद्धा की जगह नारी भोग्या थी, पति की या पुरुष की आश्रिता थी, उसकी अपनी कोई सामाजिक हैसियत नहीं थी। आधुनिक पूंजीवादी समाज में भी नारी की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। लेनिन ने लिखा है "आधुनिक पूंजीवादी समाज के अन्दर गरीबी और उत्पीड़न की अनेक ऐसी बातें निहित हैं जो फौरन नहीं नजर आती। टुटपुंजिया दस्तकारों, मजदूरों, कर्मचारियों और छुटभैया अधिकारियों के अलग-अलग परिवार सख्त मुसीबतें झेलते हैं और अच्छे से अच्छे वक्त भी मुश्किल से दो जून की रोटी जुटा पाते हैं। ऐसे परिवारों में लाखों लाख औरतें घरेलू गुलामों की जिन्दगी जीति (बल्कि झेलती) हैं जो दयनीय आमदनी के अन्दर अपने परिवारों का पेट भरने और तन ढ़कने के लिए कतख्योत और जतन करती रहती हैं, उनके लिए जी तोड़ कोशिशें करती हुई अपनी सेहत के सिवा हर चीज में किफायत करती रहती हैं।

पूंजी बड़ी खुशी से इन औरतों को घरेलू काम देती है। वे अपने लिए तथा अपने परिवारों के खातिर रोटी का एक टुकड़ा जुटाने की खातिर कुछ अतिरिक्त कमा लेने के लिए मिट्टी के मोल काम करने के लिए तैयार रहती हैं इन्हीं औरतों में से सभी देशों के पूंजीपति (प्राचीन काल के दास स्वामियों और मध्ययुग के सामन्त सरदारों की तरह) अपने लिए बेहद 'माकूल' कीमत पर चाहे जितनी भी रखेलें रखते हैं और वेश्यावृत्ति पर चाहे जितना भी "नैतिक क्रोध (99 फीसदी पांखण्डपूर्ण) क्यों न किया जाये, उससे इस बुर्दा फरोशी का अन्त नहीं हो सकता, क्योंकि जब तक उजरती गुलामी कायम है तब तक वेश्यावृत्ति का जारी रहना लाजिमी है। मानव समाज ने इतिहास में हमेशा सभी उत्पीड़ित या शोषित वर्गों को पहले तो अपने शोषकों को बेगार देने को और दूसरे अपने 'मालिकों' को रखेलों के रूप में अपनी औरतें देने को बाध्य (और ठीक इसी रूप में उनका शोषण निहित है) होना पड़ा।" गुलामी की प्रथा, भूदास-प्रथा और पूंजीवाद के बीच इस मामले में कोई अन्तर नहीं है। शोषण का केवल रूप बदल जाता है, लेकिन खुद शोषण कायम रहता है।[1]

नारी की सदा ही यह गति रही हो ऐसा नहीं है प्राचीन काल में भारतीय समाज में नारी को भी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। डॉ. धर्मदत्त कौसाम्बी का मत है "बौद्ध और जैन वाङ्मय पढ़ने पर एक विशेष बात ध्यान में आती है कि उस समय स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह धार्मिक बातों में प्रगतिशील थी। इसका कारण यह था कि गण सत्तात्मक राज्यों में स्त्रियों को पूरी स्वतंत्रता रहती थी। बुद्ध भगवान ने बाज्जियों को उन्नति के जो सात नियम बताये उनमें पाँचवाँ यह था कि "स्त्रियों के मान की रक्षा करना चाहिए, विवाहित या अविवाहित स्त्री पर किसी भी प्रकार से बलात्मकार नहीं होने देना चाहिए"[2] लेकिन यह बात बहुत देर तक टिकी नहीं रह सकी और पूंजीवादी युग आते-आते उसकी तस्वीर ही उलट गयी। नारी की गुलामी के और शोषण के जिस रूप की ओर लेनिन ने ध्यान दिलाया है वह इस समाज का सर्वाधिक घृणित पहलू है। प्रगतिशील कवियों ने नारी को इस शोषित रूप से उबारने के लिए उनके हकों की लड़ाई लड़ी है, वे स्त्री को केवल एक 'बायलाजिकल नीड' के रूप में भी नहीं देखते बल्कि डॉ. रामविलास शर्मा का मत है कि स्त्री की समस्या को एक वर्ग की समस्या के रूप में उजागर करना चाहिए। उन्होंने नारी की स्थितियों का ऐतिहासिक विश्लेषण लेनिन की ही परम्परा में और स्पष्ट करते हुए लिखा है "जहाँ पर स्त्रियों को खेत पर काम करना पड़ेगा, जहाँ वे आम बीनने जायेंगी, महुआ बीनने जायेंगी, वहाँ वे पुरुषों के बराबर काम करेंगी, चाहे वे मजदूर के घर में हों, चाहे छोटे किसान के घर में हो वहाँ उनको अधिक अधिकार मिलते हैं।[3] इसका मतलब हुआ कि स्त्री की मुक्ति, उसके कर्म से जुड़ी हुई है। शर्मा जी आगे लिखते हैं "जहाँ श्रम की बराबरी होगी, स्त्री आर्थिक रूप से स्वतंत्र होगी। अपने पैरों पर खड़ी होगी, शिक्षित होगी, वहाँ सहयोग के आधार पर परिवार का नया रूप बनेगा। मैं समझता हूँ कि इतिहास की गति यह है और नारी समस्या को हल करने का तरीका यह है।" उनका मानना है कि स्त्री पुरुष की समस्या को सामाजिक समस्या के रूप में वर्ग संघर्ष के रूप में पेश करना चाहिए। आज के युग में स्त्री के प्रति किस तरह की धारणाएँ चल रही हैं, सामाजिक न्याय और स्त्री अधिकारों के आन्दोलन चल रहे हैं उनके लिए रामविलास जी यह सलाह देते हैं "स्त्री को पुरुष के खिलाफ खड़ा करने वाले आन्दोलनों में यह बात भुला दी जाती है कि भारत में स्त्री समस्या सब जगह एक जैसी नहीं है उनमें इस बात को भुला दिया जाता है कि शोषण पर आधारित वर्ग-विभक्त समाज में स्त्री और पुरुष दोनों का शोषण होता है और इसको बदलने के लिए सामाजिक सम्बन्धों को बदलना जरूरी है। "ये सामाजिक सम्बन्ध कैसे बदलेंगे, इस बात पर प्रगतिशील कविता में सर्वाधिक चिन्तन मनन हुआ है।

on OnePlus
ed by Triple Camera

सशक्त दलित मीडिया की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका

ISSN 2277-2553

वर्ष: 17 अंक: 04 माह: फरवरी, 2021

₹50/-

सम्यक भारत

75 वां जन्मदिवस

संत रविदास जयंती पर हार्दिक शुभकामनाएं

माण्डू

ऐतिहासिक पर्यटक स्थल

हिमा दास बनी डीएसपी

राहुल गांधी की माफी

मैं निजीकरण के विरुद्ध

डॉ. चन्द्रपाल, पूर्व सचिव भारत सरकार

सीएनजी ट्रैक्टर

बेगमपुरा का सपना

GURU RAVIDAS JAYANTI

ाष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग का गठन

संपादक मंडल
मंजू के पी मौर्य (मुख्य संपादक एवं स्वामी)
प्रबंध संपादक
डा. चन्द्रपाल (पूर्व सचिव भारत सरकार)
कार्यकारी संपादक
अनुपम आनंद

शोध लेख परीक्षा समिति
प्रो. सिकन्दर कुमार
कुलपति, हिमाचल विश्वविद्यालय, शिमला, हि.प्र.
प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन
विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो. कालीचरन स्नेही
हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
डा. रामविनोद रे
हिंदी एवं को-अपरेटिव साहित्य, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, केरल

वरिष्ठ सहायक संपादक
डा. एस एल सागर, दिल्ली | बी आर मौर्य, दिल्ली
रवि विद्रोही, दिल्ली | रईस सागर, दिल्ली
सूरजभान कटारिया, दिल्ली | डा. धीरज आर्या, दिल्ली
राजाराम मौर्य, उ.प्र. | डा. विक्रम पासवान, बिहार
वी. भास्कर राव, कर्नाटक | के. रवि कुमार, चैन्नई
लालचंद सिंह, उत्तराखंड | कुलदीप कृष्ण, हिमाचल प्रदेश
धर्मवीर सिंह, उ.प्र. | रोहित कुमार, उ.प्र.
सियाराम कश्यप, हैदराबाद | विक्की सिंह, हिमाचल प्रदेश

कार्यालय
संपादकीय एवं विज्ञापन
सम्यक भवन, सी.1/98, रोहिणी सैक्टर-5, नई दिल्ली-110085
मो. 09310008230, 09958490511

ई-मेल:
samyakbharat@rediffmail.com | samyakbharat@samyakbharat.in
बेवसाइट: www.samyakbharat.in फेसबुक: Samyakbharat

(इस पत्रिका में प्रकाशित लेखकों की राय में संपादक या प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है, किन्तु प्रकाशित लेखों पर यदि किसी को कोई आपत्ति हो तो अपनी प्रतिक्रया भेज सकते हैं।
सभी संबंधित पदाधिकारी अवैतनिक हैं।)

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी मंजू मौर्य के लिए **'आर्या आफसेटप्रैस'**, 308/3 एफ, शहजादाबाग, दयाबस्ती, दिल्ली-35 से मुद्रित एवं **सम्यक भवन**, सी-1/98, रोहिणी सैक्टर-5, नई दिल्ली-85 से प्रकाशित
- मंजू मौर्य, संपादक एवं प्रकाशक
किसी भी विवाद की स्थिति में दिल्ली न्यायालय ही मान्य होगा।

सम्यक भारत राष्ट्रीय हिंदी मासिक
वर्ष: 17 अंक: 04 माह: फरवरी, 2021

इस अंक में

1. संपादकीय
- बेगमपुरा का सपना 04-04

2. सम्यक समाचार
- शीएनजी ट्रैक्टर 09-11
- विश्व भारती विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह 12-14
- राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग का गठन: विजय सांपला 15-15
- गुजरात के केंद्रीय विश्वविद्यालय का दीक्षांत समारोह 16-18
- विश्व बैंक ने कृषि को दिया बढ़ावा 26-27
- रतनलाल कटारिया ने योगदान करने में अपील की 52-53

3. आलेख
- डा. सत्यनारायण जटिया का 75 वां जन्मदिवस 05-08
- दीना भाना और डी के खापर्डे: रमा शंकर बामसेफ 38-40
- क्रांतिकारी लोक नायक संत रविदास: आर एल फ्रांसिस 41-41
- आज़ाद की माता जी: चितरंजन कुमार 56-56
- राहुल गांधी की माफी: अरुण कुमार त्रिपाठी 57-59
- कुछ दर्दीला भी और मीठा भी है: शब्द मसीहा 61-63

4. इतिहास के आईने में
- रबीन्द्रनाथ टैगोर: एक युगदृष्टा 19-21

5. हिन्दी साहित्य
- 'वाया फुरसतगंज' लोकार्पित: डा. विक्रम पासवान 43-45

6. साक्षात्कार
- मैं निजीकरण के विरुद्ध: डा. चन्द्रपाल पूर्व IAS 48-51
- पीड़ितों को न्याय दिलाना मेरा कर्तव्य: अरुण हलधर 65-66

7. पुस्तक समीक्षा
- प्रेरक दलित कहानियां: ज्योति पासवान 35-37

8. कविताएं
- मौसम के बदलते रंग: श्याम लाल राही 08-08
- जीत हुई बेकार: के पी मौर्य 18-18
- जीवन फागुन मास: श्रवणकुमार उर्मलिया 21-21
- सीख लिया कर: के पी मौर्य 37-37

९. पर्यटक स्थल
- माण्डू: एक ऐतिहासिक पर्यटक स्थल 22-25

10. खेल कूद
- हिमा दास बनी डीएसपी 46-47

11. धर्म एवं संस्कृति
- गुरु रैदास और उनका बेगमपुरा 54-55

12. शोध पत्र
- कवियों के प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण: डा. हरेन्द्र सिंह 28-34

शोध पत्र

डा. हरेन्द्र सिंह (ऐसोसिएट प्रोफेसर, जाकिर हुसैन कालेज, दिल्ली)

प्रगतिशील कवियों के प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण

प्रगतिशील कवियों का जो प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण है, वह ठोस सामाजिक सम्बन्धों से जुड़ी हुई वास्तविकता है। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है कि प्रगतिशील कविता में स्वच्छन्दतावादी काव्य का रोमांटिक भावबोध ही विकसित होकर विस्तृत और ठोस आधार प्राप्त करता है। "छायावाद का प्रभाव प्रगतिशील कविता पर क्षयशील दृष्टि को द्योतक नहीं बल्कि उसी के क्रमिक स्वस्थ विकास का द्योतक है, प्रगतिशील कवियों में प्रेम के क्रमिक विकास को पूरी तरह से प्रतिष्ठित किया है। "सौन्दर्य और प्रेम की अनुभूतियाँ नर और नारी को आदिकाल से अब तक जीवन यापन के लिए संघर्ष के क्रम से प्राप्त हुई हैं। ऐसा नहीं है कि आदिम युग में नर और नारी पैदा होते ही अपने साथ-साथ यह अनुभूतियाँ लेकर आये हों। पहले तो वे जैविक जीवन के लिए बाध्य थे। परिवार और कुटुम्ब तक बने नहीं थे, लेकिन कालान्तर में सहयोगी, सहकर्मी, सहभोगी और सहयात्री होकर धीरे-धीरे एक दूसरे की निकटता और सामीप्य पा सके। ऐसे ही क्रम में वे एक दूसरे के आकर्षण और विकर्षण का केन्द्र बनते गये और जब जीवन जायदाद अपनी कर सके, तब वे भी एक दूसरे को अपनी आत्मीयता का अंश बना सके। ऐसे दीर्घ कालीन संघर्ष कालीन जीवन में रहते हुए उसे साथ-साथ भोगते हुए अपनी सौन्दर्य और प्रेम परक दृष्टि निखार और संवार सके जो सौन्दर्य केवल नारी का अपना था वह काल क्रम में उसके सहकर्मी और सहभोगी नर का भी हो गया है और परिणाम यह हुआ कि इस प्रकार के प्राप्त सौन्दर्य ने नर और नारी में एक दूसरे के प्रति जो आत्मीयता बनती गयी। वह प्रेम की अनुभूति का आकर लेती गयी। यह आवश्यक नहीं था कि हर एक नर और नारी उतनी ही तीव्रता और आवेग से एक दूसरे के सौन्दर्य से अभिभूत होते और वैसी ही उत्कृष्टता से एक दूसरे को प्रेम करते। इसीलिए सौन्दर्य और प्रेम के साथ जीवन जीते हुए भी नर और नारी अपनी-अपनी

डा. हरेन्द्र सिंह

अलग-अलग पहचान बनाए रख सके। परिवार जैसे-जैसे बनता गया समाज बढ़ता गया वैसे-वैसे सौन्दर्य और प्रेम की भावनाएँ भी नैतिकता और अनैतिकता के घेराव में अपना मूल जैविक रूप बदलने लगी है और उनका सामाजिक रूपान्तरण होने लगा।

साहित्य में भी सौन्दर्य और प्रेम की अभिव्यक्तियाँ, तदनुरूप आदिम जैविक प्रवृत्तियों से परिष्कृत होती हुई स्वाभाविक रूपान्तरण को प्राप्त हुई। काव्य की रचना नर ही ज्यादातर करता आया है। नारियों ने कम ही काव्य की कृतियाँ रची हैं। वे शिक्षित नहीं थीं। परिवार के पालन पोषण में अपना जीवन खपा देती थी। मातृ सत्तात्मक समाज में अवश्य ही नारियों का प्रमुख हस्तक्षेप रहा है फिर भी उस समाज के नर ने नारी के सौन्दर्य की जो कल्पना की थी, वह दुर्गा, काली और देवियों के रूप में प्रतिष्ठित हुई थी। इसके विपरीत पितृ सत्तात्मक समाज में नर ही समाज का नियन्ता था और वही नारी को उसके विभिन्न रूपों में देखता और वैसे ही चित्रित करता था।

इसीलिए संसार की सभी भाषाओं के काव्यों में नर द्वारा निर्मित काव्य में नारी की देह यष्टि के अंग प्रत्यंग का वर्णन मिलता है और यह भी मिलता है कि नर ने अपनी नारी को व्यापक और बृहत्तर भावभूमि पर पहुंचा कर उसे प्रकृति के रूप बिम्बों से और भी मर्मस्पर्शी रूप में अभिव्यंजित किया। इसलिए पर्वत और उरोज एक जैसे हुए जंघाएं कदली खम्ब और सरिताओं की धाराएँ हुई, अन्य अंग भी इसी प्रकार प्रकृति के रूपालंकरण पाते चले गये।

संघर्षशील आदमी घर से बाहर जीवन की लड़ाई लड़ता था और अनेकानेक विपत्तियों का सामना करता था और जब घर आता था, तब अपनी नारी के सान्निध्य में एक होकर अपनी थकान और अपने शैथिल्य को दूर करने के लिए नारी सौन्दर्य से अपने को अभिव्यक्ति करता था तथा

डॉ. हरेन्द्र सिंह

केदारनाथ अग्रवाल और रामविलास शर्मा के प्रकृति प्रेम के स्वरूप में अन्तर

प्रकृति और मनुष्य का जो सम्बन्ध है उस सम्बन्ध की प्रगाढ़ता यदि कहीं स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है तो वह है कविता। कविता मनुष्य और प्रकृति के आपसी सम्बन्धों का इतिहास है। यदि हमारे पास मानव का संचित इतिहास कला के रूप में है तो प्रकृति का इतिहास कविता के रूप में है। प्रकृति ने मनुष्य को जीवन दिया है। इस बात को केदारनाथ अग्रवाल की एक छोटी सी कविता से अच्छी तरह जाना जा सकता है-

"पेड़ नहीं/पृथ्वी के वंशज है,
फूल लिये/फल लिये,
मानव के अग्रज हैं।"[1]

यह कविता मनुष्य और प्रकृति के आपसी सम्बन्धों को मार्क्सवादी ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचित करती है। प्रकृति के प्रति यह बोध हमें मार्क्सवाद ने दिया है। प्रकृति पहले भी थी और आज से ज्यादा वन्य रूप में लेकिन तब मनुष्य के पास ऐतिहासिक दृष्टिबोध नहीं था। तब कवियों ने प्रकृति को हैरानी से देखा था। ऋषियों ने कहा था "कस्मै देवाय हविषावदन्ती" यह उसके लिए आश्चर्य की वस्तु थी। धीरे-धीरे मनुष्य ने इन आश्चर्यों को नजदीक से देखा, परखा। इस देखने परखने में उसने प्रकृति के साथ संघर्ष किया। धीरे-धीरे इन संघर्षों से मनुष्य ने प्रकृति पर जीव पाई और तब प्रकृति मनुष्य के हावभावों की दासी हो गई। प्रकृति का चित्रण कवियों ने मनुष्य की मनःस्थितियों के चित्रण के लिए करना शुरू किया। प्रकृति का अस्तित्व लगभग खत्म हो गया। इसके बाद भी प्रकृति और भी सिमटी और रीतिकालीन साहित्य में वह कुंज और अरहर के खेतों तक ही सिमट गई। ऐसे वातावरण में कवियों की दृष्टि भी बंध गई। चेतना बंध गई। नये कवियों ने इस दृष्टि और तंग चेतना के खिलाफ आवाज उठाई और इस आवाज का साथ सर्वप्रथम प्रकृति ने ही दिया। छायावाद में प्रकृति पुनः प्रतिष्ठित हुई मानव सम्बन्धों के साथ। यहाँ प्रकृति का खूब आदर्शीकरण किया गया। छायावाद में प्रकृति कविता के केन्द्र में तो आई लेकिन उसमें एक सहस्यमयी भावना, जिज्ञासा बनी रही। इस जिज्ञासा को सन्तुष्ट किया मार्क्सवाद ने और तब प्रगतिशील कवियों ने प्रकृति को उसके ऐतिहासिक स्वरूप और मानव सम्बन्धों के साथ जोड़कर और स्वतंत्र रूप से भी प्रकृति का सहज स्वाभाविक रूप का चित्रण किया। प्रगतिशील कवियों में केदार और रामविलास शर्मा त्रिलोचन और नागार्जुन ने, शमशेर और मुक्तिबोध ने प्रकृति का अपने-अपने ढंग से वर्णन किया लेकिन केदार और रामविलास शर्मा की कविताओं में जो प्रकृति है वह खास आंचलिकता और मानव रागबोधों से जुड़ी हुई है। केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में जहाँ बांदा और उसके आस-पास की प्रकृति है तो रामविलास शर्मा की कविताओं में उनके जनपद गढाकोला की आंचलिक प्रकृति। लेकिन यह प्रकृति केवल आंचलिक बनकर नहीं रह जाती है उनकी सार्थकता मनुष्य के श्रम और क्रांति के साथ जुड़ती हुई आगे बढ़ती है।

केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी प्रकृति सम्बन्धी कविताओं के सम्बन्ध में लिखा है "मैंने प्रकृति को चित्र के रूप में देखा है। उसके सम्पर्क में मुझे जीने के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ता अतएव प्रकृति का मेरा निरूपण चित्रोमय निरूपण है, उसमें कलाकारिता है, शब्दों का सौन्दर्य है, ध्वनियों की धारा है"[2] केदार के इस कथन की जाँच

सशक्त दलित मीडिया की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका

ISSN 2277-2553

वर्ष: 17 अंक: 04 माह: फरवरी, 2021

₹50/-

सम्यक भारत

75 वां जन्मदिवस

संत रविदास जयंती पर हार्दिक शुभकामनाएं

माण्डू

ऐतिहासिक पर्यटक स्थल

हिमा दास बनी डीएसपी

राहुल गांधी की माफी

मैं निजीकरण के विरुद्ध

डॉ. चन्द्रपाल, पूर्व सचिव भारत सरकार

सीएनजी ट्रैक्टर

बेगमपुरा का सपना

GURU RAVIDAS JAYANTI

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग का गठन

सम्यक भारत अब www.samyakbharat.in पर पढ़ें

Shot on OnePlus
Powered by Triple Camera

संपादक मंडल

मंजू के पी मौर्य (मुख्य संपादक एवं स्वामी)

प्रबंध संपादक

डा. चन्द्रपाल (पूर्व सचिव भारत सरकार)

कार्यकारी संपादक

अनुपम आनंद

शोध लेख परीक्षा समिति

प्रो. सिकन्दर कुमार

कुलपति, हिमाचल विश्वविद्यालय, शिमला, हि.प्र.

प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन

विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. कालीचरन स्नेही

हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

डा. रामविनोद रे

हिंदी एवं को-अपरेटिव साहित्य, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, केरल

वरिष्ठ सहायक संपादक

डा. एस एल सागर, दिल्ली | बी आर मौर्य, दिल्ली

रवि विद्रोही, दिल्ली | रईस सागर, दिल्ली

सूरजभान कटारिया, दिल्ली | डा. धीरज आर्या, दिल्ली

राजाराम मौर्य, उ.प्र. | डा. विक्रम पासवान, बिहार

वी. भास्कर राव, कर्नाटक | के. रवि कुमार, चैन्नई

लालचंद सिंह, उत्तराखंड | कुलदीप कृष्ण, हिमाचल प्रदेश

धर्मवीर सिंह, उ.प्र. | रोहित कुमार, उ.प्र.

सियाराम कश्यप, हैदराबाद | विक्की सिंह, हिमाचल प्रदेश

कार्यालय

संपादकीय एवं विज्ञापन

सम्यक भवन, सी.1/98, रोहिणी सैक्टर-5, नई दिल्ली-110085

मो. 09310008230, 09958490511

ई-मेल:

samyakbharat@rediffmail.com | samyakbharat@samyakbharat.in

बेवसाइट: www.samyakbharat.in फेसबुक: Samyakbharat

(इस पत्रिका में प्रकाशित लेखकों की राय में संपादक या प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है, किन्तु प्रकाशित लेखों पर यदि किसी को कोई आपत्ति हो तो अपनी प्रतिक्रया भेज सकते हैं। सभी संबंधित पदाधिकारी अवैतनिक हैं।)

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी मंजू मौर्य के लिए **'आर्या आफसेटप्रैस'**, 308/3 एफ, शहजादाबाग, दयाबस्ती, दिल्ली-35 से मुद्रित एवं **सम्यक भवन**, सी-1/98, रोहिणी सैक्टर-5, नई दिल्ली-85 से प्रकाशित

- मंजू मौर्य, संपादक एवं प्रकाशक

[illegible] विवाद की [illegible] न्यायालय ही मान्य होगा।

Shot on OnePlus
Powered by Triple Camera

सम्यक भारत राष्ट्रीय हिंदी मासिक

वर्ष: 17 अंक: 04 माह: फरवरी, 2021

इस अंक में

1. संपादकीय
- बेगमपुरा का सपना 04-04

2. सम्यक समाचार
- सीएनजी ट्रैक्टर 09-11
- विश्व भारती विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह 12-14
- राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग का गठन: विजय सांपला 15-15
- गुजरात के केंद्रीय विश्वविद्यालय का दीक्षांत समारोह 16-18
- विश्व बैंक ने कृषि को दिया बढ़ावा 26-27
- रतनलाल कटारिया ने योगदान करने में अपील की 52-53

3. आलेख
- डा. सत्यनारायण जटिया का 75 वां जन्मदिवस 05-08
- दीना भाना और डी के खापर्डे: रमा शंकर बामसेफ 38-40
- क्रांतिकारी लोक नायक संत रविदास: आर एल फ्रांसिस 41-41
- आज़ाद की माता जी: चितरंजन कुमार 56-56
- राहुल गांधी की माफी: अरुण कुमार त्रिपाठी 57-59
- कुछ दर्दीला भी और मीठा भी है: शब्द मसीहा 61-63

4. इतिहास के आईने में
- रबीन्द्रनाथ टैगोर: एक युगद्रष्टा 19-21

5. हिन्दी साहित्य
- 'वाया फुरसतगंज' लोकार्पित: डा. विक्रम पासवान 43-45

6. साक्षात्कार
- मैं निजीकरण के विरुद्ध: डा. चन्द्रपाल पूर्व IAS 48-51
- पीड़ितों को न्याय दिलाना मेरा कर्तव्य: अरूण हलधर 65-66

7. पुस्तक समीक्षा
- प्रेरक दलित कहानियां: ज्योति पासवान 35-37

8. कविताएं
- मौसम के बदलते रंग: श्याम लाल राही 08-08
- जीत हुई बेकार: के पी मौर्य 18-18
- जीवन फागुन मास: श्रवणकुमार उर्मलिया 21-21
- सीख लिया कर: के पी मौर्य 37-37

९. पर्यटक स्थल
- माण्डू: एक ऐतिहासिक पर्यटक स्थल 22-25

10. खेल कूद
- हिमा दास बनी डीएसपी 46-47

11. धर्म एवं संस्कृति
- गुरु रैदास और उनका बेगमपुरा 54-55

12. शोध पत्र
- कवियों के प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण: डा. हरेन्द्र सिंह 28-34

वर्ष : 7 • अंक : 28 • अप्रैल-जून 2021 • ISSN 2347-6605

वाक् सुधा

VAAK SUDHA

(अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका)

(International Peer Reviewed Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

(A Scholarly Peer Reviewed Journal)

विशेष सूचना :

विचार की प्रतिबद्धता में राष्ट्रहित सर्वोपरि है।

रूपेश कुमार चौहान
स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं सम्पादक
द्वारा 47, ब्लॉक ए-3, गली नं. 5, धर्मपुरा एक्सटेंशन, दिल्ली-43 से प्रकाशित एवं डॉल्फिन प्रिंटोग्राफिक्स, 4ई/7, पाबला बिल्डिंग, झंडेवालान् एक्सटेंशन, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।
दूरभाष संख्या-09555222747, 9267944100, 9555666907
Email: vaaksudha@gmail.com • Website : www.vsirj.com

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय ..... *viii*

प्रेमचंद का खेतिहर एवं मजदूर समाज की स्थिति 1
डॉ. रत्नेश कुमार सिंह

अथर्ववेदस्य सामाजिकं महत्त्वम् 6
वेदमित्र आर्यः

शैलीविज्ञान में चयन संयोजन प्रतिमान और अग्रप्रस्तुति प्रतिमान में अंतर और अंतर्संबंध 8
डॉ. कमलेश सरीन

वर्तमान मीडिया का बदलता स्वरूप 14
डॉ. सरोज कुमारी

पूर्व मध्यकालीन मत्स्य की एक मन्दिर-नगरी राज्यपुर (राजगढ़) 17
आशिद खान

रूपावतार एवं प्रक्रियाकौमुदी में परस्पर साम्य-वैषम्य 21
प्रो. सत्यपाल सिंह/किरण

औद्योगिक महिला श्रमिकों की दशा 26
डॉ. मुन्नी चौधरी

भक्ति काव्य की नयी समझ : कुछ नये विचार 41
डॉ. अलका मिश्रा

सीलोर ग्राम के कालबेलिया जनजाति में सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन 46
दीन दयाल वर्मा / डॉ. शर्मिला कुमारी

अशोक वाजपेयी की आलोचना-प्रवृति 51
धीरेन्द्र मोहन मीना

श्रम की स्वीकार्यता और कामकाजी महिलाएँ 56
पूनम कुमारी

विवेकख्याति प्राप्ति का साधन-राजयोग 59
डॉ. राजीव कुमार मिश्र

प्रगतिवाद की अवधारणा का मूल्यांकन 68
ब्रजेश कुमार

ऋता शुक्ल के उपन्यासों में चित्रित ग्राम्य-संस्कृति 71
साक्षी कुमारी

हिन्दी के नुक्कड़ नाटक : उद्‌भव एवं विकास ... 74
डॉ. रतन अरविन्द

राजा राममोहन राय की पत्रकारिता और सांस्कृतिक दृष्टि 80
डॉ. भवानी दास

मन्नू भंडारी के कथा साहित्य में परिवार 84
मुनेश देवी

मौर्य एवं गुप्तकाल के मध्य सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति : एक दृष्टि 88
अनूप कुमार मलिक

भीष्म साहनी की 'प्रतिनिधि कहानियां' में व्यक्त मानवीय-सरोकार 94
संतोष कुमार भारद्वाज

राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता 98
डॉ. अमित कुमार पाण्डेय

समकालीन हिंदी कविता और धूमिल 102
डॉ. अवधेश कुमार

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में घराना परम्परा 107
डॉ. सुनीति दत्ता

वैश्वीकरण के दौर में हिंदी : विस्तार एवं संभावनाएं 114
प्रदीप कुमार

केशव कृत रामचन्द्रिका का काव्य सौंदर्य 118
अभिनव

समकालीन कविता में अभिव्यक्त किसान जीवन का यथार्थ और भूमंडलीकरण 122
सोनिका

नागार्जुन की कविता में स्वर 127
सज्जन कुमार

विश्व भाषा के रूप में हिन्दी 131
डॉ. शशि रानी

सज्जन कुमार

नागार्जुन की कविता में स्वर

नागार्जुन की कविता का मुख्यस्वर है जनवादिता, जिसमें जनता के भाव, विद्रोह, संघर्ष, संत्रास, शोषण, पीड़ा, व्यवस्था, पूँजीवादी व्यवस्था, सरकार की नीतियाँ, उपेक्षितों, दलितों, महिलाएँ एवं क्रोध आदि हैं। जहाँ त्रुटियाँ नजर आयी उसके विरोध में उन्होंने अपना स्वर ऊँचा किया। जनता के आक्रोश को स्वयं के भाव मानकर उसे अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया है। नागार्जुन उन दमित व्यक्ति के इच्छाओं की आवाज हैं, जो अत्याचार, आपातकालीन, हिंसा, सांप्रदायिकता का शिकार हुआ है। इनकी रचनाओं की भाषा कबीर की तरह अक्खड़पन और निराला से पूर्णत: प्रभावित है। वह गरीब मजदूर को कभी नहीं भूले जो हमेशा प्रताड़ित होता रहा और आज भी हो रहा है। बाबा हमेशा उसके आँसू पोछते रहे और अपने आँसू बहाते रहे। उसके दु:ख में, उसके संघर्ष में, बाबा सम्पूर्ण मानवता के दु:ख-दर्द को भाप लेना चाहते थे और उसे शब्दों में जगह देते हैं। नागार्जुन जन से कभी भी परे नहीं हुए बल्कि उनके साथ खड़े हुए। जन भी 'तुच्छजन' जो सदियों से प्रताड़ित, लांछित रहा है। बहुत कम रचनाकार होते हैं जिनके सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्ष में कहीं कोई अंतर नहीं होता। नागार्जुन का उनमें सर्वोपरि स्थान है। नागार्जुन मार्क्सवाद के विचारों से प्रभावित थे। उन्होंने युगों से दलित पीड़ित लोगों को अपने साहित्य में साफ तस्वीरें खींचकर उनका शोषण करने वाली ताकतों को बेनकाब किया। जनता और सरकार की असलियत को सामने लाना ही इन्हें जनकवि बनाता है।

मेहनतकशों के बारे में, भूख से पीड़ित जनों के बारे में तमाम शोषित-पीड़ित जनों के जीवन-प्रसंगों के बारे में उन्होंने सिद्धान्त के कारण ही नहीं, बल्कि अपने जीवन के निजी अनुभूतियों से उनका मेल होने के कारण भी लिखा है। किसान आंदोलन में भाग लेने और मार्क्सवाद को अपनी चेतना में जगह देने के पहले उन्होंने स्वयं यह अनुभव किया, जो जीने के साधनों से वंचित लोग अनुभव करते हैं और उनके प्रति नागार्जुन में करुणा और साधन-सम्पन्नों के प्रति क्रोध, क्षोभ एवं प्रतिहिंसा का भाव है। वे अपनी 'बेकार' कविता में सन् 1937 में लिखते हैं -

"मानव होकर मानव के ही चरणों मैं रोया।
दिन बागों में बिना रात को पटरी पर मैं सोया।
राजकीय ये उच्च डिग्रियाँ, ऐसा सुन्दर मुखड़ा
तो भी नहीं किसी ने सुनना चाहा मेरा दुखड़ा
कभी घुमक्कड़ यार-दोस्त से मिलकर कभी अकेला-
एक-एक दाने की खातिर सौ सौ पापड़ बेले।"

मनुष्यता की मर्यादा, समाज की निर्ममता और जीने के लिए सौ पापड़ बेलने की मेहनत, यह कवि का अपना अनुभव है। भला नागार्जुन का भोगा हुआ यथार्थ किसी मानवीय सरोकार से कम नहीं है। स्पष्टत: इनका धर्म लोकजीवन के प्रति हमेशा समर्पित रहा है। तमाम उम्र जनहित के विवेक को एक सार्थक दिशा की ओर ले जाने के लिए प्रतिबद्ध रहा एवं व्यापक जीवनानुभव और उससे पैदा होने वाले साहस के साथ भीतरी मौलिकता से जन्म

लेती है इनकी कविता। वे खुद कहते हैं कि – "मैं अपने भीतर की मरोड़ को कविता में व्यक्त कर पाता हूँ। यही दु:ख-सुख की भाषा है।"[1] शायद यही कारण है कि इनकी कविताओं में भारतीय जन और समाज का बहुआयामी सामाजिक यथार्थ साफ-साफ झलकता है जो जीता-जागता यथार्थ लगता है।

नागार्जुन के सम्पूर्ण साहित्य की रचनाधर्मिता है शोषितों, गरीबी, दलित पर हो रहे अत्याचार एवं महिला शोषण का विरोध करना। इसलिए इनका साहित्य अभिजात्य वर्ग से बाहर निकलकर जन साधारण के बीच खरा उतरता है जिसमें शोषितों के पसीने की गंध रहती हैं वस्तुत: इनकी कविता का स्वर जनजीवन का यथार्थ और कला का गहन संयोग है। यही कारण है कि इनकी सम्पूर्ण रचनाओं में सौन्दर्य, विद्रोह और बहुआयामिता भरी पड़ी है जिसके लिए वे प्रतिबद्धता, संबद्धता और आबद्धता के साथ डटे हुए रहते हैं –

"प्रतिबद्ध हूँ
सम्बद्ध हूँ
आबद्ध हूँ
– – – –
– – – –
सम्बद्ध हूँ जी हाँ सम्बद्ध हूँ"[2]

जीवन के विभिन्न रूपों में कवि मानव के साथ हमेशा खरा उतरता है। इसलिए वे कहते हैं 'कवि हूँ पीछे पहले तो मैं ही हूँ।'

मनुष्य की मनुष्यता को बाबा अपनी कविता में लाकर खड़े कर देते हैं। कोई अमीर या मध्यवर्ग के व्यक्ति जब किसी गरीब या मजदूर को बसों में देखता है तो किस प्रकार दूर होने का चेष्टा करता है। ऐसे पूँजीपतियों उनके हितसाधक नेताओं, असामंजस्य में पड़े मध्यवर्ग के बाबुओं को देखकर बाबा हँस देते हैं। वे कहते हैं ड्रम के नीचे दर्जे में कुली-मजदूर ठसाठस भरे हैं। उनके बीच फँस गया है कोई भद्रलोक। उसकी परेशानी का मजा लेते हुए कहते हैं –

"छूती है निगाहां को
कत्थई दाँतों की मोटी मुस्कान
बेतरतीन मूछों की थित्कन
सच-सच बतलाओ
घिन तो नहीं आती है।
जी तो नहीं कुढ़ता है।"[3]

"शमशेर की नाजुक खमाली से मिलती-जुलती नागार्जुन की यह नाजुक बयानी है – कत्थई दाँतों की मोटी मुस्कान, बेतरतीब मूछों की थिरकन, लेकिन एकदम भिन्न सन्दर्भ में, एक भिन्न उद्देश्य की पूर्ति के लिए। शमशेर की तरह नागार्जुन ने पूरी तस्वीरें न देकर आंशिक बिम्ब से काम लिया है, लेकिन आधा व्यंग्य तो आमतौर पर रमणीय अंगों के उतार-चढ़ाव के लिए सुरक्षित रहती है।"[4] निश्चय ही इनकी कविताओं का स्वर व्यंग्यात्मक है जो इनके समकालीन कवियों से अलग करती है। नागार्जुन की व्यंग्य शैली अत्यन्त ही मार्मिक रूप में दिखाई पड़ती है। इनकी लगभग सभी कविता व्यंग्यात्मक शैली में लिखी गई है जो समय काव्यों में अलग आकर्षण का केन्द्र है। इनके तीखे व्यंग्य से कोई नहीं बच सकता, साथ ही अहितकारी रूढ़ियों और परम्पराओं के प्रति करारा विरोध जताते हैं। प्रकाश चंद्र भट्ट लिखते हैं – रामराज के सपने टूटने पर तेवर बदलती हिन्दुस्तानी जनता की रोषभरी फुफकार का रूप ग्रहण कर लिया है।[5] जनता की रोष भरी फुफकार इनकी कविताओं में अनेक स्थानों पर देखा जा सकता है। व्यंग्य की कचोट से सभी स्थलों को यथार्थ रूप प्रदान करते हैं। इस प्रकार इनके समस्त काव्य शोषित, पीड़ित और अहसास जनता की पीड़ाओं, अभावों, सुखों-दुखों को व्यक्त करने वाला है। इनकी तीव्र प्रतिक्रिया और जिम्मेदारी के विरुद्ध व्यंग्यपूर्ण आक्रोश का रूप नागार्जुन के काव्य में बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से उभरा है। जिसमें पूँजीपतियों, सामंतवादियों और राजनेताओं को जब यह जनहित के विरुद्ध कार्य करते हैं जिसे कवि ने 'राम राज्य में अब की रावन नंगा होकर नाचा है' से संबोधित किया है। वही कांग्रेसी नेताओं पर बहुत ही प्रभावशाली रूप में तीखा व्यंग्य करते हैं –

"लाज-शरम रह गई न बाकी गाँधी जी के चेलो में
फूल नहीं, लठियाँ बरसती रामराज की जेलों में
भैया लन्दन ही पसन्द है आजादी की सीता को
नेहरू अब उमर गुजारेगे अंग्रेजी खेले में
लाज शरम रह गई न बाकी गाँधी के चेलों में।"[6]

नागार्जुन की कविताओं में जो यथार्थ प्रतिबिम्बित है, जो चरित्र चित्रित है, जो मनुष्य दिखाई पड़ता है, वह

वास्तव में जीने के साधनों के लिए तरसता हुआ प्रतीत होता है, उन साधनों को पाने के लिए तरसता हुआ प्रतीत होता है। उन साधनों को पाने के लिए लड़ता हुआ प्रतीत होता है। यही यथार्थ है, जिसे कवि बदलना चाहता है। बदलने की जरूरत, आकांक्षा और संघर्ष ही अंतर्वस्तु के उद्देश्य है। जीवन की असंगति को संगति में लाना अंतर्वस्तु का उद्देश्य होता है।[7]

हरिजन गाथा प्रमुख कविताओं में एक है इसमें मार्मिक दृश्य है, इस दृश्य में उस समय की राजनीति एक सोची समझी साजिश थी तभी तो इंदिरा गाँधी अपनी राजनीति का शंखनाद इसी गाँव से फूँकती हैं। लोकहर्षक कांड सिर्फ एक जगह नहीं हुआ था, बल्कि यह पूरे भारतीय समाज की कहानी है। इस उत्पीड़न की वेदना को बगावत में ढालते हैं और उसमें केवल किसी तबके या वर्ग की तकदीर नहीं बल्कि पूरे भारत के राष्ट्रीय-सामाजिक चरित्र में युगांतरवादी परिवर्तन का आह्वान करते हैं -

"दिल ने कहा-दलित माओं के
सब बच्चे अब बागी होंगे
अग्निपुत्र होंगे, वे अंतिम
विप्लव के सहभागी होंगे।"[8]

यह कविता पूरे राज्य और सामंती ताकतों के गठजोड़ पर चोट करती हुई दिखाई पड़ती है। नागार्जुन परिवर्तन के मुख्य केन्द्र गाँवों को मानते थे और गाँव के दलित-निम्नवर्ग को परिवर्तनवादी चेतना का मुख्य वाहक भी करते हैं। इनकी संगठित प्रतिरोध के बल पर एक नया इतिहास लिखने की ताकत भी रखते हैं, जिसे वे गाँव में रह कर पूरा कर सकते हैं -

"होगे इसके सौ सहायोद्धा
लाख-लाख जन अनुचर होंगे
होगा कर्म-वचन का पक्का
फोटो इसके घर-घर होंगे।"[9]

बाबा मानते थे कि दलितों के उद्धार के लिए सौ-सौ योद्धाओं का उदय होगा। दरअसल, 1977 में भोजपुर दहक रहा था। राष्ट्रीय क्रांति को नये रूप में देखा जा सकता था गाँवों में जमींदार-किसान आमने-सामने था, वैकल्पिक दल के पास राजनीति दिल्ली के गलियारों में नहीं बल्कि बिहार के गलियारों में गूँज रही थी। इनकी विता 'हरिजनगाथा' के बारे में कमल भारती कहते हैं - दलित हनुमान बनकर सवर्णों की सोने की लंका में आग लगाने की बात कर रहे हैं।... दलित चिंतन के लिए यह बच्चे के भयावह भविष्य की कल्पना है जिसमें कोई भी दलित अभिभावक पसंद नहीं करेगा। यदि अपने बच्चे में जाति के मुक्तिदाता की भी कल्पना करेंगे तो गंडासे, भाला और बम के साथ नहीं, बल्कि कलम के साथ।[10] निश्चय ही कंवल भारती जी का मानना है कि बच्चों को हथियार नहीं कलम देना चाहिए, लेकिन घटित घटनाओं को देखने के बाद ऐसा लगता है कि कलम से ज्यादा शक्ति हथियार में ही है। कांग्रेस या बीजेपी सभी में कुछ दलित जरूर ही मंत्री होते हैं। स्वाभाविक है पढ़े लिखे ही होंगे "दुर्भाग्य है कि आज का कथित दलित आंदोलन आंबेडकर के विचारों से दूर मूलत: सत्ता के कांग्रेसी मॉडल पर आधारित है जिसमें दलितों की सामूहिक मुक्ति के स्थान पर दलितों की केवल प्रतिनिधित्व दिलाने की बात की जाती है। प्रतिनिधित्व के नाम पर दलितों के प्रभावशाली मुखर हिस्से को सत्ता व प्रशासन में शामिल कर लिया जाता है और फिर उन्हीं का इस्तेमाल किसी जमीनी आंदोलन को खारिज करने में किया जाता है।[11] निश्चय ही आज के दलित बाबा साहेब के आदर्शों पर ठीक ढंग से खरे नहीं उतरते, सत्ता में आते ही गुलामी की जंजीर से बांध दिया जाता है। इस संदर्भ में बाबा नागार्जुन दलितों को हनुमान बनाना चाहते हैं, वहीं कंवल भारती जी दलितों को अपनी वस्तुस्थिति से रू-ब-रू कराते हुए उन्हें कार्तिकेय भगवान बनाना चाहते हैं।

निश्चय ही इनके स्वर के बहुआयामी रूप इनके साहित्य में उभारकर सामने आते हैं जहाँ उनकी छटपटाहट विभिन्न विधाओं में अभिव्यक्त होती है। अपने समय की पीड़ा, अपने समय का अन्तर्द्वंद्व कवि के भीतर निरन्तर पकता रहता है और कविता, उपन्यास के माध्यम से फूटता है। नागार्जुन अपनी सीमाओं को लांघकर कविता को जन साधारण के बीच लाकर खड़ा कर देते हैं। उनकी कविता विविध भाव-भूमियों पर यात्रा करती हुई जन साधारण के बीच रच-बसकर उसका दु:ख-दर्द टटोलती है-

"कवि हूँ सच है
किन्तु क्षणिक तथ्यों को अवहेलित करके
शाश्वत का सीमांत क्या कभी छू पाऊँगा।"[12]

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संदर्भ सूची

1. नागार्जुन : विविध आयाम : मनीषा साव, पृ. 15
2. कविता का प्रति संसार : निर्मला जैन, पृ. 122
3. नागार्जुन प्रतिनिधि कविता : नामवर सिंह, पृ. 36
4. नई कविता और अस्तित्ववाद : रामविलास शर्मा, पृ. 157
5. नागार्जुन जीवन और साहित्य : ...., पृ. 114
6. इस गुब्बारे की छाया में : नागार्जुन, पृ. 19
7. नागार्जुन का कवि कर्म : खगेन्द्र ठाकुर, पृ. 223-24
8. रचनावली (भाग-2) : हरिजन गाथा : शोभाकान्त, पृ. 163
9. रचनावली (भाग-2) : हरिजन गाथा : शोभाकान्त, पृ. 183
10. नयापथ : वैभव सिंह : (संपा.) मुरली मनोहर सिंह, जनवरी-जून 2011, पृ. 330
11. नयापथ : वैभव सिंह : (संपा.) मुरली मनोहर सिंह, जनवरी-जून 2011, पृ. 333
12. नागार्जुन रचना संचयन : राजेश जोशी, पृ. 11